भारतीय इतिहास के साधन
ब्राहमण ग्रंथ

1. ऋगवेद : ऋतक का अर्थ होता है छन्दो और चरणों से युक्त मंत्र।
ऋचा : ऋक का बहुचन।
सम्भवतः भारत वर्ष में प्रवेश से पूर्व ही आर्यजन ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना कर चुके थे।
छन्द :छन्दों की संख्या 21 मानी जाती है।
पिल्य : ऋग्वेद में जुड़े परिशिष्टों को पिल्य कहते थे।
विनियोग : जिस क्विेश कार्य के लिए सुक्तो का प्रयोग किया जाता था उसे विनियोग कहते हैं।
सुक्त (1028) : प्रत्येक सुक्त में उस ऋषि का नाम अथवा गोत्र होता है जिसने उसकी रचना की थी।
2. सामवेद : सामवेद में साम का अर्थ होता है गान
उदगाता : सामवेद के गायक को उदगाता कहते है।
3. यजुर्वेद : यजु का अर्थ होता है यज्ञ यह मूलतः यज्ञ प्रधान वेद है। यह 5 भाषाओं में विभक्त है :–
1. कृष्णयजुर्वेद– 1. काठक 2. कृपिष्ठल 3. मैतायगी 4. तैत्तीरीय
2. शुक्ल यजुर्वेद : वाजसनेपी
4. अर्थवेद : रचना अथवा ऋषि
अर्थवेद में आर्थ तथा अनार्य विचार धाराओं का समन्वय मिलता है।

ब्राहमण ग्रन्थ
ब्रहम का अर्थ होता है यज्ञ–यज्ञ के विषयों का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ ब्राहमण कहलाये। इनकी रचना/यज्ञ तथा कर्मकांड के जटिल स्वरूप को समझाने के लिए की गयी थी।
अधिकांशतः ब्राहमण ग्रंथ : गद्य में मिलते है। परन्तु कहीं पद्य में भी मिलता है।
आख्यक : गुप्त व जोखिम भरे क्रिया कलाप आख्याको में कोरे यज्ञवाद के स्थान पर चिंतनशील ज्ञान के पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है।
आख्यको की संख्याः इस समय 7 आख्याको की संख्या उपलब्ध है।

1. ऐतरेयआख्यक 2. शांबायन आख्यक
3. तैत्तरीय आख्यक 4. मैत्रायगी आख्यक
5. माध्यन्दिन आख्यक 6. तलवकर आख्यक

उपनिषद्
उपनिषद आख्या की टीका है। आख्या के बाद उपनिषदो का नम्बर आता है। उपनिषदो को ब्रहमविधा तथा वेदात भी कहा जाता है। इनकी संख्या 12 है।

वेदांग
वेदांग 6 प्रकार के होते है :–
1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरूक्त 5. छंद 6. ज्योतिष

कल्पसूत्र : कल्प का अर्थ विधि नियम होता है। इसके तीन भाग है।

1. श्रोतसूल – इसके तहत सुल्ब सूत्र भी आता है।
2. ग्रहय सूत्र
3. धर्म सूत्र

2. व्याकरण :
1. पाणिनी की अष्ठाध्यायी इसमें 18 अव्याय है।
2. कात्यायन की वर्तिक
3. पातंजलि का महाभाष्य
कार्तिक तथा महाभाष्य : अष्टाध्यायी की पूरक तथा टीका है।

3. निरूक्त : जो शास्त्र यह बताता है कि अमुक शब्द का अमुक अर्थ होता है उसके निरूक्त शास्त्र कहते हैं।
यास्क ने निरूक्त की रचना की थी। इसमें 12 अध्याय है।

1. छन्द : पिंगक द्वारा रचित : छन्दशास्त्र
2. ज्योतिष : सर्वप्राचीन ज्योतिषाचार्य –तगशमुनि
कालान्तर के ज्योषिाचार्य : आर्यभट्, बराहमिहिर, ब्रहमगुप्त, मुंजाल, भास्कराचार्य
स्मृति
सर्वप्राचीन : मनुस्मृति – याज्ञवाक्य, पुराण
पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन होता है।
18 पुराण : 1. सर्वाधिक प्राचीन–ब्रहमपुरणा
2. नवीन ब्रहमांड पुराण

पुराणो के विषय :
1. सर्ग 2. व्रतिसर्ग 3. वंश–देवताओं और ऋषियो के वंश 4. मन्वन्तरा–अनेक मनु 5. वंशानुचरित–राजवंश
बौद्धग्रंथ
पिटक : विनय पिटक, सूत्रपिटक, अभिधम्म पिटक

1. विनयपिटक : इसमें शिक्षु और शिक्षुक्षिणों के संघ एवं दैनिक जीवन सम्बधी के आचार विचार, विधिनिषेध और यम–नियम इत्यादि संग्रहित है।
विभाग : विनयपिटर के निम्न विभाग है :–
1. सुत्र विभाग : क. महाविभंग
ख. शिक्षुणी विभंग
2. खन्धका : क. महाबग्ग ख. चुल्लबग्ग
3. परिवार अथवा परिवारपाढ़

महावग्ग व चुल्लबग : ये बौद्धो के सर्वप्राचीन ग्रंथ हैं। इनमें शिक्षुओं के संघीय एवं दैनिक जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विधि–निषेध एवं यम–नियम है।
चुल्लबग्गा : इसमें कुल 12 अध्याय है। 11वें और 12वें अध्याय में क्रमशः प्रथम और द्वितीय बौद्ध संगीतियों का वर्णन है।
2. सुत्तपिटक

सुत्त का अर्थ धर्मोपदेश अथवा धर्माख्यान होता है।
सुत्तपटिक : इन्हीं धर्मोदेशों का समुच्चय है। सुत्तपिटक के 05 निकाय है।
क. दीर्घ निकाय : इस निकाय की ग्रंथ महापीरनिष्वान सुत्त है।
ख. मजिक्षमसिकाय
ग. संयुक्त निकाय
घ. अंगुत्त्र निकाय
ड. खुददक निकाय : यह लघुग्रंथो का संग्रह है। इसके निम्न ग्रंथ है :–
1. खुद्दक के पाठ
2. घम्मपद : इसमें धर्म शील और सुदंर सिद्धान्त है।
3. उदान
4. इतिवुत्तक : बुद्धवाक्यों का संग्रह।
5. सुत्तनिवात : यह विविध धर्मोपदेशों और धर्माखयानों का संग्रह है।
6. विमसवत्थु
7. रिगाथा
8. थेरीगाथा
9. जातक : भरहुत एवं सांची के स्तूपो पर अनेक जातक दृश्य अंकित हैं। रचनात्मक : प्रथम खताब्दी ई0पू0
10. वदृवंश : अपदान चरियापिटक

अभिधम्म पिटक
इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ कथावस्तु है।
पाक्ती बौद्धग्रंथ : 1. मिलिन्दपन्ध बाय नासेन मिनेन्डर व नागसेन संवाद
दीपवंश : इसमें सिंहक्त दीप के इतिहास का वर्णन है। इसकी रचना विलुप्त अष्ठ कथाओं के आधार पर हुई है। रचनाकाल 4 व 5 वी शताब्दी है।
महावंश : यह भी सिंहक्त का ग्रंथ है। इसकी रचना महानाम नामक ऋषि द्वारा 5वीं शताब्दी में किया था।
काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ–दीपवंश से अधिक उत्कृष्ट है।
विशेष : चन्द्रगुप्त मौर्य का विशेष ज्ञान हमे इन्हें सिंहली ग्रंथो से होता है।
टीकाग्रंथ : 1. सुमंगक विलासिनी 2. सामन्त प्रसादिका 3. महावंश टीका

संस्कृत बौद्ध ग्रंथ

1. महावस्तु : यह महात्माबुद्ध का जीवन वृत्त है। यह ग्रंथ छीनयान तथा महायान के बीच की संक्रांति काल में लिखा गया था।
2. कलिवविस्तार : अर्थ – ललित (बुद्ध) का सविस्तार वर्णन है। यह महायोनी ग्रंथ है।
3. दिव्यादान

सूत्रकाल–उपनिषदों के बाद सूत्रकाल आता है।
सूत्रकाल तीन प्रकार के होते है :– 1. श्रोत सूत्र 2. ग्रव्थ सूत्र 3. धर्म सूत्र

स्मृति साहित्य : सूत्रकाल के बाद स्मृति काल सूत्र आता है।

दोनो का प्रतिपाध विषय : धार्मिक व सामाजिक विधि व सूत्रसाहित्य गद्य तथा पद्य दोनो में है। जबकि स्मृति साहित्य केवल पद्य में है।
संगीति
1. प्रथम बौद्ध संगीति : चुल्लवग्ग के समस्त उपदेशो को संगृहित कर धम्म और विनय को निश्चित रूप देने के लिए।
सुभद्र : सुभद्र नामक व्यक्ति ने बुद्ध की मृत्यु पर संतोष प्रकट करते हुए कहा था कि ''अब हम सब महात्मा बुद्ध द्वारा निर्मित एवं प्रतिपादित अनेक संग्रह विधि निषेधों से मुक्त हो गये हैं। इसकी कारण इस संगीति का आयोजन किया गया था।''
स्थान–राजग्रह, अध्यक्षता–महाकश्यप

2. द्वितीय बौद्धसंगीति : वैशाली : बुद्ध की मृत्यु के 100 वर्ष बाद कालाशोक के समय में अध्यक्षता महाकाव्स्थानन

कारण : इसके आयोजन का मुख्य कारण बौद्ध भिक्षुओं का सैद्धान्तिक मतभेद बताया जाता है।
मतभेद : वैशाली के भिक्षु 10 सिद्धान्तों में विश्वास करते थे। परन्तु यश नामक भिक्षु ने उन्हें धर्म विरूद्ध घोषित किया। यही मतभेद था।
वर्णन : चुल्लबग्ग मे।
3. तृतीय संगीति : पाटलीपुत्र
वर्णन : दीपवंश, महावंश, समस्त पसादिका में उत्तरीभारत, चीन, तिब्बत, एवं अन्यग्रंथो में इसका वर्णन नहीं मिलता। हवेनसांग तथा अशोक के अभिलेखों में इसका कोई वर्णन नहीं मिलता।
कथावस्तु : उपोसथ तथा पवारणा का काफी दिनों से न होना तथा संघ की धार्मिक व्यवस्था में शिथिलता।
कारण : उपोसथ तथा पवारणा (पाठ) का काफी दिनों से न होना तथा संघ की धार्मिक व्यवस्था में शिथिलता।
कथावस्तु : इसकी रचना संगीत के बाद मोगल्लिपुत्र शिष्य ने की थी।
4. चर्तुथ संगीति : कारमीर, वशमित्र
कारण : धार्मिक मतभेदों को दूर करने के लिए महावंश व दीपवंश में इसका वर्णन नहीं मिलता।
हवेनसांग : के अनुसार यह संगीति काश्मीर हुई थी।
तारानाथ के अनुसार यह जालन्धर में हुई थी।
अब्दुल अहद के अनुसार : यह जौनपुर में हुई थी।

जैनधर्म ग्रन्थ
आगम : इसमें साधारणतय 12 अंग 128 योग 10 प्रकीर्ण 6 छंद सूत्र है।

पाटलिपुत्र प्रथम संगीत : महावीर की मृत्यु के 160 वर्ष बाद लगभग 800 बी0सी0 में अपनी धर्म परम्पराओं को संग्रहित और संगठित करने के लिए जैन भिक्षुओं ने पाटलिपुत्र में अपनी प्रथम का आयोजन किया।
द्वितीय संगीत : 313 ए0डी0, धार्मिक कथाओं को पुनः संगठित करने के लिए।

स्थल : यह संगीत एक ही समय में दो स्थलों पर आयोजित की गई थी।
1. प्रथम–मथुरा, अध्यक्ष : स्कन्दिल
2. द्वितीय–वलभी, अध्यक्ष : नागार्जुनसूरि

तृतीय संगीत : भिन्न–2 जगह आयोजित होने के कारण द्वितीय संगीत में संगठित ग्रंथो में मतभेद होना स्वाभाविक था। इसलिए इस मतभेद को दूर करने के लिए तृतीय संगीत का आयोजन किया गया था। इसलिए इस मतभेद को दूर करने के लिए तृतीय संगीत का आयोजन किया गया था।
स्थान–वलभी, अध्यक्ष–देवर्धि, समय : 513 अथवा 526 ई0पू0।

इसी संगीत में समस्त ग्रंथो को लिखित रूप दिया गया।

अंग–12 : 1. आचारांग सुक्त : जैन भिक्षुओं के आधार नियम
2. भगतीवसुक्तः इसमें महावीर स्वामी के जीवन एवं कार्य कलापों का वर्णन है।
3. नायाघम्मकथ सुक्तः इसमें महावीर की शिक्षायें संकलित हैं।

व्याख्याग्रंथ : कालांतर में जैन धर्म ग्रंथो के उपर समय समय पर अनके व्याख्या ग्रंथ लिखे गये। ये व्याख्या ग्रंथ 5 प्रकार के हैं :–
1. निर्युक्ति 2. आख्या 3. टीका

प्रमुख टीकाकार : हरिभद्र सूरी – शीलांक, नेमिचन्द्र सूरि–अभयदेव सूरि, मलयागिरि
ऐतिहासिक ग्रंथ
अर्थशास्त्र, रचनाकाल–चौथी शताब्दी ईसापूर्व
गार्गीसंहिता : प्रथम ई0पू0, ज्योतिष ग्रंथ
कामन्दकीय नीतिसार, रचनाकाल–700–800 ई0पू0
बृहस्पति का अर्थ शास्त्र : 900–1000 ई0पी0

विषय राजनीतिक कर्तव्य
राजतरंगिणी, 12वीं शताब्दी, कल्हण
गौडहवो – बाक्पतिराज, प्राकृत भाषा।
कन्नौज नरेश, यशोवर्मा, श्री दिग्विजय

नवसहसांक चरित्र : परिमत गुप्त,
परमारवंश का इतिहास

मानसार : वास्तुकाल से सम्बन्धित
विदेश यात्रा विवरण

1. यूनानी यात्री : इन्हें तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है।
क. सिकन्दर के पूर्व यूनानी लेखक, स्काईलेक्स–हिकेटिअस मिलेरस
हेरीहोटस (इतिहास का जन्मदाता)

स्काईलैक्स : हिकेटिअस मिलेटस
हेरीहोटस – इतिहास का जन्मदाता
रचना : विक्टोरिया–इसमें भारत की पश्चिमोतर जातियों का वर्णन मिलता है। शेष दोनों में भारत का कोई वर्णन नहीं मिलता है।
केसिअस : रचना–इंडिका व पार्शिका, इनमें भी भारतीय इतिहास मिलता है।

ख. सिकन्दर के समयकालीन लेखक

1. निर्याकस 2. एरिस्टोव्यूलस, रचना–युद्ध का इतिहास 3. ओनेसिक्रिटस–इसमें सिकन्दर की जीवनी लिखि थी।

ग. सिकन्दर के पश्चात् यूनानी लेखक :

1. भेग स्थनीज : इंडिका (विलुप्त ग्रंथ) इसके कुछ उद्रधरणों को संगृहित कर डा0 स्वानवेक ने 1846 ई0 में इसके प्रकाशित किया था। 1891 ई0 में मैकमिण्डल महोदय ने इस संग्रह की अंग्रेजी में अनुवाद किया था।
2. डाईमेकस : सैल्यूकस के दरबार में यूनानी राजदूत।
3. स्ट्रेबो : प्रथम शताब्दी, ग्रंथ–भूगोल
4. एरियन : ग्रंथ 1. इंडिका
   2. सिकन्दर का आक्रमण
5. प्लिनी : ग्रंथ, नेचुरल हिस्ट्री, यह 77 ई0 में प्रकाशित हुआ था।
6. डायोनीसिस : राजदू, अशोक की सभा में,
7. पेट्रक्लीज
8. पालीवियस
9. पेरीप्लस
10. एलियन : इसमें दो ग्रंथ लिखे हैं।
    1. ए कलैक्शन ऑफ मिशलेनियस
    2. ऑन द पेक्यूलिरेटीस ऑफ एनिमल्स

रोमन लेखक

1. टारूमी : द्वितीय शताब्दी

चीनी यात्री

सुमाचीन : चीनी इतिहास की जन्मदाता। इसने अपने ग्रंथ में भारत का भी वर्णन किया है।

फाहयान : यह 399 ई0 में आया था। इसका उद्देश्य बौद्ध धर्म ग्रंथो का अध्ययन तथा अनुशीलन था। यह भारत में 15–16 वर्षों तक रहा। इसने चन्द्र द्वितीय समेमत किसी भी नरेश का वर्णन अपने यात्रा विवरण में नहीं किया है।

हवेगंसांग : 629 ई0 में आया था। 13 वर्षों तक 642 ई0 तक रहा। यह दक्षिण भारत को छोडकर शेष समस्त भारत का वर्णन किया था।

हवीली : यह हवेनसांग का मित्र था तथा हवेनसांग की जीवनी लिख था।

इत्सिंग : यह 698 ई0 के लगभग भारत आया था।

तारानाथ : कंगूर तथा तंगूर नामक दो ग्रंथो की रचना किया था।

पुरातत्व सम्बन्धी साधन

1. अभिलेख 2. स्मारक 3. मुद्रायें।

1. अभिलेख : अशोक के पूर्ववर्ती अभिलेख

1. प्रिवा कलश अभिलेख – वस्ती
2. बडली अभिलेख : अजमेर।

फिर भी अभिलेखो की परम्परा भारत में अशोक काल से शुरू होती है।

अभिलेखों के निम्न प्रकार हैं :–

1. स्तम्भलेख
   - क. अशोक के स्तम्भलेख
   - ख. जैनिमो केन्द्रीय स्तम्भ
   - ग. वैष्णवों के गरूणध्वज स्तम्भ
   - घ. क्षत्रियो के कीर्तिस्तम्भ विजय स्तम्भ और रण वासुदेव
   - ड. हेलियो डोटस का विदिशा स्तम्भ लेख
   - च. स्कन्दगुप्त का शित्तरी स्तम्भ लेख
   - छ. समुन्द्रगुप्त का पंचाग प्रशस्ति
   - ज. चन्द्र द्वितीय का मेहरौली स्तम्भ लेख

   शिलालेख–पहाडियो को काटकर

1. अशोक के शिलालेख
2. पुष्पमित्र शुग की अयोध्या अभिलेख
3. रूपदामन की जूनागढ अभिलेख
4. खाखेत का हाथी गुम्फा अभिलेख।

3. महालेख –
   1. बराबर गुहालेख : अशोक
   2. नागार्जुन गुहालेख : दशरथ
   3. नासिक नानाघाट कार्ले

1. सरविलियम जोन्स ' यूनानी यात्री तिहासमोरा के के सौन्द्रोकोटरस की पहचान चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया।

1. सुदर्शनशील : सुदर्शन शील का उददेश्य केवल रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख 150 ई0 तथा स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में मिलता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य व अशोक के अभिलेखों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसकी जानकारी में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनकी जानकारी गिरनार अभिलेख से ही होता है।

1. जैम्स प्रिंसेप : 1837 में सर्व प्रथम जैसप्रिंसेस ने ही अशोक के अभिलेखों को पढने में सफलता पायी।

मृदभाण्ड

1. काले एवं लालमृदभाण्ड : इनका समय हडप्पा सभ्यता के बाद माना जाता है। इसमें स्थायी जीवन के अवशेष नहीं मिलते। तिथि अनिश्चित।
2. गेरू वर्णी मृदभाण्ड : तिथिक्रम की दृष्टि से इसे ऋग्वैदिक काल का माना जाता है। ये ऋग्वैदिक अज शिगु एवं पक्ष जातियों द्वारा प्रयुक्त होते थे। अस्थाई जीवन
3. चित्रित घूसर मृदभाण्ड : यह पंजाब हरियाणा, राजस्थान एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। ये तिथि क्रम से उत्तरवैदिक काल के हैं। इनसे स्थाई जीवन का संकेत मिलता है। हरियाणा के भगवानपुरा नामक स्थान से एक पक्की ईंट की 13 कक्षीय भवन इसकी संस्कृति तथा काल का मिला है।
4. उत्तरीकाली वाक्ते मृदभाण्ड : बौद्र व मौर्ययुग : पूर्वी यू0पी0 बिहार से मिले हैं। वैसे इनका विस्तार समस्त उत्तरी भारत में था।

   आहमुद्रायें : इसी काल की हैं। इससे स्थाई व कृषि जीवन की पूर्ण संकेत मिलता है।

श्रेणी व्यवस्था

श्रेष्ठि : यह श्रेणियों का प्रमुख होता था जो निर्वाचित न होकर राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। यह पद वंशानुगत भी होता था।

2. नैगम व निगम : अमरकोष में निगम का प्रयोग नगर के लिए नैगम का प्रयोग व्यापारी के लिए हुआ है।
3. निगम का प्रधान : श्रेष्ठि

श्रेणी का प्रधान : प्रमुख

पूग का प्रधान : जेष्ठम होता था।

श्रेणी यह विभिन्न स्थानों के व्यापारियों तथा व्यवसायियों की संस्था थी।

पूग : यह स्थानीय हितो की वृति निधि संस्था थी।

निगम : यह मात्र एक नगर के व्यवसायियों व व्यापारियों की संस्था थी।

4. श्रेष्ठि : यह सबसे अधिक लोकप्रिय संस्था थी।
5. सेठिठत्थान : यह श्रेणियों का कार्यालय था।
6. श्रेष्ठि : शासन तथा व्यापारियों दोनो का प्रतिनिधित्व करता है।
7. प्रवध समिति : श्रेणी संगठन की एक पूवध समिति होती थी। जिसमें 2 से 5 सदस्य रहते थे।
8. जातके में 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख किया है।

अभिलेखों में श्रेणियों का विवरण

1. नासिक अभिलेख : इसमें दो प्रकार की श्रेणी का उल्लेख है :–

1. तंतुवाय/बुनकर : उल्लेख मिलता है कि नहवान का दामाद उषवदात इस श्रेणी के पास उहलार कार्षापण जमा कराया था। 2 हजार एक कार्षापण प्रति सैकड़ा ब्याज पर और एक हजार की ब्याजदर तीन चौथाई पर थी।

2. कुम्भकार की श्रेणी

2. मंदसौर अभिलेख : कुमार गुप्त–

1. पटवाय श्रेणी रेशम बुनकर : ज्ञात होता है कि पटटवाय श्रेणी में मंदसौर में सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया था।

3. इंदौर अभिलेख : स्कन्दुप्त

1. तैलिक श्रेणी : इसमें सूर्य मन्दिर में दीप जलाने के लिए तेलदान में दिया था।

4. मथूरा अभिलेख : कुषाणकालीन : 1. आटा पिसक : इसमें आटा पीसने वाली श्रेणी का उल्लेख है।

5. जुन्नार अभिलेख : इसमें बंसकार, कसेरा व धान्य विक्रेताओं की श्रेणियों का उल्लेख है।

नगरम व मनीग्राम्म : यह नानादेशों की तरह दक्षिणी भारत की श्रेणी का नाम है।

1. श्रेणियोंको : आर्थिक सामाजिक धार्मिक जन कल्याण एवं राजैनतिक कार्य करने पडते थे।

2. ये बैकिंग कार्य भी करती थी। इनकी अपनी सेना तथा न्यायालय होते थे। यद्यपि कुछ परिस्थितियों में इनके निर्णयों के विरूद्ध राजांक न्यायालय से अपील हो सकती थी। ये सिक्के तथा मुद्रायें भी जारी करती थी।

3. श्रेणी सदस्य सामूहिक तथा व्यक्तिगत दोनो रूप में व्यापार कर सकते थे।

4. राजपूत काल में सामंतवाद के कारण श्रेणियों का ह्रास हुआ था। किन्तु दक्षिणी भारत में इनका विकास अनवरत रूप से जारी रहा।

5 प्रयाग के समीप भीटा नामक स्थान की खुदाई से मौर्यकालीन ब्राहमी लिपि में सहजाति निगमस अंकित एक मिट्टी की मुद्रा मिली है।

6. अवदानशतक में उल्लेख मिलता है कि वाराणसी के 500 वासियो ने मैत्रकायम नामक सार्थवाह के साथ मिलकर साक्षा व्यापार के निमित सार्थ गठित किया था।
1. सम्भूय समुत्थान : कई व्यापारियों द्वारा मिलकर/साझा व्यापार को समुम्भ समुहत्थान कहा जाता था।
2. समय : स्मृतियों में साझा व्यापार सम्बन्धी नियमों को समय कहा गया है।
1. जेष्ठक : शिल्वी संघ के अध्यक्ष को सेटठी कहा जाता था। इसके हाथो में व्यापार व उद्योग होता था। यह एक प्रकार का महाजन और वर्कर भी था।
2. भोगागम : नगर में रहने वाले शिल्वी व व्यापार संघो जैसे सेरठस व जेष्ठक के निर्वाह के लिए राजा द्वारा दी भूमि को कहा जाता था।

उत्तरवैदिक काल

1. उत्तरवैदिक काल : राजा के चुनाव की प्रथा खत्म हो गयी। ऋग्वेदिक काल में चुनाव के द्वारा राजा का पद स्थित किया जाता था और उसके बाद उसके राज्याभिषेक का अनुष्ठान सम्पन्न होता था।
   अब राजपद के लिए उत्तराधिकार की प्रथा चल पडी। यही नहीं अब धार्मिक कर्मकांडो के समय राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित करने की प्रथा भी चल पडी।
2. क्षोत्रिय – विद्वान ब्राहमण
3. वाजघेय यज्ञ : प्रतिवर्ष 17 दिन तक चलता था।
4. राजसूटा यज्ञ : सम्राट का पद प्राप्त करने के लिए/2 वर्ष राज्याभिषेक के समय किया जाता है। इस यज्ञ के संचलन करने वाले पुरोहित को 2,40,000 गायें दान में दी जाती थी।
5. अश्वमेघ यज्ञ : सबसे प्रसिद्ध और महबाधी यज्ञ था। तीन दिन तक चलता थ और घोडा एक वर्ष तक घूमने के लिए छोड़ा जाता था। वर्ष के अंत में घोड़े को वापस लाकर 600 सांडो के साथ उसकी भी बली दी जाती थी।
6. उपनिषद काल तक तवस्था का प्रचार प्रसार हो गया। इस प्रकार तपश्चर्या से वैदिक यज्ञ की श्रेष्ठता को और यज्ञ से लाभान्वित होने वाले ब्राहमणो को भी चुनौती दी।
7. चारो आश्रमों का विकास उपनिषदों में विकसित तपश्चर्या की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था।

1. शिक्षा द्वारा सभी प्रियों के लिए खुला था। लेकिन वेदों पर एक मात्र ब्राहमणों का ही अधिकार था।
2. आर्यों की शिक्षा मौखिक थी। उन्होनें किसी प्रकार की लेखन कला को विकसित नहीं किया था।

वैदिक देवमण्डल

1. द्यु–स्थानीय अथवा आकाश देवता : घौस वरूण मित्र आदित्य सूर्य, सविता, उषा, विष्णु, पूषा, अश्विनी, चन्द्रमा
2. अंतरिक्ष देवता : इन्द्र, रूद्र, वात, वायु, पर्जन्य, मरूत, मातरिखा आदि
3. पृथ्वी स्थानीय देवता : अग्नि, बृहस्पति, सोम, समुद्र, सरस्वती आदि
1. वरूण : इसका उल्लेख जगत के नियत देवताओं के पोषक तथा ऋतु के रूप में दिया गया है। कालान्तर में यह आप जल देवता मात्र रहा गया है।?

2. सविता : इसमें सूर्य का दिन में दिखाई पडने वाला रूप और रात्रि में न दिखाई पडने वाला रूप दोनो था।
3. रूद्र : क्षशावात के साथ घनघोर कालेवाद के साथ उग्र था।
4. अग्नि को : जाट वेदात तथा भुवन यक्षु कहा गया है।
5. सोम : यह अमरत्व, स्फूर्ति, आहलाद, शक्ति, प्ररेणा का प्रतीक था।
6. मरूत : यह कदपत्र का तथा क्षंक्षारात का देवता था। वे इन्द्र के भाई कहे गये हैं।
7. पर्जन्व : यह जल वर्षा तथा नदियों का देवता माना गया है।
1. आप : यह वैदिक कालीन उषा की तरह देवी थी। इसका उल्लेख माता के रूप में हुआ है।
2. उषा : यह सूर्य की पत्नी थी।
8. आदेति : इसमें विशाल प्रकृति का दैवीकरण किया गया था। यह आर्यों के सविभोंव भावना की देवी थी।
9. आदयानी : वनदेवी
10. सिन्धु नदीं : आर्यो ने सिन्धु नदीं को भी देवी माना है।
11. सरस्वती : बुद्धि को।
1. मत्स्यपुरान : लिंग पूजा का उल्लेख मिलता है।
2. भागत पुराण में पसावतारों का वर्णन है।
अमरकोष में 39 अवतारों का वर्णन हैं

यज्ञ : 25 से 40 वर्ष की आयु का सपलीक व्यक्ति ही यज्ञ सम्पन्न कर सकता है।
छवि : यज्ञ में घी, दूध तथा मांस की आहूति की जाती थी। जिसे हवन कहा जाता है।
1. सोमयज्ञ : सम्राट आदि बनने के लिए राजन्यवर्ग विशालकाय सोमयज्ञों का निष्पादन कराते थे। इस यज्ञ के पीछे भौतिक और आर्थिक स्मृद्धि प्रेरणा थी तथा यह समक्षा जाता था कि दैवी शक्ति की कृपा से वाले की संवृद्धि होती है।
यज्ञ के आधार तत्व : बलिदान, पितृपूजा, उर्वरता प्रदापक, अनुष्ठान, देवता तथा पापो से मुक्ति आदि

प्रमुख यज्ञ : –
1. अग्नि होल यज्ञ : इसे पापो के क्षय और स्वर्ग की ओर ले जाने वाले सर्वोत्तम नाव के रूप में स्वीकार किया गया था। यह प्रातः और सांय काल अग्नि की उपासना के साथ सम्पन्न किया जाता था।
2. चातुर मास्य यज्ञ : यह प्रति चार माह में सम्पन्न किया जाता है। यह पापो के क्षय के निमित किया जाता था।
3. अग्निष्टोम यज्ञ : यह पांच दिनों तक चलता था। इसका उददेश्य भी सोम यज्ञ की तरह भौतिक एवं आर्थिक समृद्धि था।
4. पुष्पमेघ यज्ञ : यह भी पांच दिनों तक चलता था तथा इसमें मनुष्य की बली दी जाती थी।
5. पंचमहायज्ञ :
1. ब्रहमयज्ञ : यह वेदाहापपन वव स्वाहपाय से सम्बन्धित है।
2. देवयज्ञ : गृहस्थ इसमें देवताओं की छवि प्रदान करता था।
3. भूत यज्ञ : इस सम्पूर्ण प्राणी को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता था।

6. राजसूय यज्ञ : इसे केवल क्षत्रिय ही करा सकता है। ब्राहमण व वैश्य नहीं। इस यज्ञ के पीछे उद्देश्य था कि युद्ध में विजय करने में जो भी पाप राजा से होता था इस यज्ञ करने से समाप्त हो जाता है। जिसमें गायें और गांव के पुरोहित को दान में मिलते हैं।
7. नाग यज्ञ : इसमें स्वर्ग प्राप्ति की कामना की जाती थी।

पूर्व वैदिक काल

1. इन्द्र के उपासक दो प्रतिद्वन्दी दलों में विभाजित थे।
प्रथम में : भारत तथा उसके मित्र सृंजय से
दूसरा दल :यदु, तुर्वस, द्रहयु, पुरू थे।
यदु व तुर्वश को ऋग्वेद की एक ऋचा में दास कहा गया है। जबकि पुरू को मृत्युवान कहा गया है। समस्त मेन आने वाली भाषा बोलने वाले।
2. दास व दस्यु : उपरोक्त दोनो दलो के अलावा दास व दस्यु थे।
3. वृचीवृत्त : तुर्वस के मित्र थे। जिनकों सम्मिलित रूप से सृंजयो ने हराया था।
4. शम्बर व कीकत नामक दासों के सरदार को दिवोदास ने पराजित किया था। दासो के विरूद्ध लड़ाई में भरतों का साथ पुरूओ ने भी दिया था।
5. गोप : जन के नायब अथवा राजा को गोप कहा जाता था। चरवाहा को भी गोप कहा जाता था। सेना कई इकाईयों में विभक्त होती थी। जिनके नाम शही, व्रात तथा गण थे।
व्रातपति : ग्रामणी हो सकता था और युद्ध में बहुत से परिवारों के प्रधानों व कुलपों का नेतृत्त भी करता था।
ग्रामिणी : यह सैनिक व अर्दसैनिक दोनो कार्यों की देखभाल करता था। सिंचाई नहरो से होती थी। खाद का उपयोग भी होता था। जीविका का प्रधान आधार कृषि थी।
3. बृबु : यह ऋग्वैदिक कालीन षणि व्यापारी था जो महान ज्ञानी था।
4. निष्क : की तौल निश्चित थी।
5. मना : यह भी सम्भवतः स्वर्ण सिक्का था।
6. पथिकृत : पथ का निर्माण – यह उपाधि अग्नि देवता के लिए थी जो व्यापारियों का मार्ग सुलभ बनाता था। जंगल को अग्नि द्वारा साफ किया जाता था।

1. कला काव्य का पूर्ण विकास हुआ था। ऋग्वेद के समय के लोगो के पा लेखन कला नहीं थी। प्राचीन लिपी की उत्पत्ति जिसमें अशोक और उसके अधिकारियों के के अभिलेख लिखे गये हैं सेमेटिक लोगो से हुई थी न कि वैदिक आर्यो से। आर्यों के प्रारम्भिक साहित्य का प्रेषण मौखिक होता था।
2. ऋग्वेद में हजार खम्भो वाले घरो का उल्लेख मिलता है।
3. पूर्व वैदिक काल में खगोलविद्या ने निश्चित रूप से उन्नति किया था और कुछ तारों का पता लगाकर उनका नामकरण किया गया था।
4. शिव : इन्द्रपूजक वित्सुओ के विरोधी थे। जबकि कृष्ण इन्द्र के विरोधी थे। यह कृष्ण नवभारत का कृष्ण नहीं था।
5. वरूण : आकाश का देवता
6. इन्द्र : वर्षा व बादल का देवता
7. वरूण : देवता की उपाधि असुर है या पापमोचक देवता भी था।
8. वरूण : बाद में वरूण का स्थान गोंन हो गया। वह मात्र जल का स्वामी अथवा भारतीय समुन्द्र देवता हो गया।
वरूण+मित्र–जैसे दीवा+पृथ्वी। वरूण का सबसे घनिष्ठ देवता मित्र था।
1. उत्तर कालीन तीन पौराणिक देवतओं ब्रहमा, विष्णु, शिव में से दो का नाम विष्णु व इन्द्र शिव का नाम ऋग्वेद में उल्लिखित है। जबकि ब्रहमा का उल्लेख रूप स्वरूप में नहीं मिलता।
2. पुर्नजन्म की भावना नहीं थी। नहीं मोक्ष थी।

1. गीता : यह महाभारत के छठवे वर्ण का भाग है।
2. ऋग्वैदिक आर्यो को यमुना नदीं के आगे का भौगोलिक ज्ञान नहीं था।
3. दास व दस्यु लोगो से घृणित थे।
4. ऋग्वेद में विजेताओं को नहीं बल्कि नगर विध्वंशक कहा गया है।
5. अयस का मतलब कांसा – यह सर्वसम्मत निर्णय है।
6. दुहिनी मुलीका क्योंकि वह गांय दुहती थी।
7. गोवध निषेध आर्थिक महत्व के कारण था न कि पवित्रता के लिए।
8. गोहन : गाय का वध करने वाला। यह शब्द अतिथियों के लिए प्रयुक्त होता था।
9. पशुपालन : सामूहिक रूप से होता था।
10. हडप्पा वासी स्वंय हाथ से खेत जोतते थे। जबकि आर्य बैल गधे व हल से खेत जोतते थे।
11. ऋग्वेद में 5 ऋतुओं का उल्लेख है।
12. ऋग्वेद में भूमि व भूमि माप के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। लेकिन कभी भी किसी व्यक्ति द्वारा जमीन की बिक्री हस्तांतरण, गिरवी, दान आदि का उल्लेख नहीं मिलता। अतः जमीन पर व्यक्तिगत स्वमित्व नहीं था।
13. राजा–फौजीनायक : यह गायों के लिए गुदवाता था न कि भू–भाग के लिए। वह भू–भाग पर नहीं अपने कबीले पर राज्य करता था।

उत्तरवैदिक काल

दन्त चौधरी मजूमदार
1. उत्तर वैदिक काल में आर्यो के विस्तार को जितना योगदान राजाओं का था उतना ही पुरोहितो का भी। पूर्व वैदिक काल में आर्य मात्र गंगा के उपरी भाग तक ही विकसित थे।
2. आर्य जगत का केन्द्र : मध्यप्रदेश में था।
3. कुरू+पांचाल
कुरू – पुरू+भारत–राजधानी आसन्दीवा, दिल्ली–मेरठ।
पांचाल : यह एक अज्ञात ऋग्वैदिक जाति से निकली थी जो क्रिवी कहलाती थी। जिसका सृंजयो व तुर्वशो से सम्बद्ध था।
राजधानी : काम्पिल्य
राजा – प्रवाहण जैवालि
ऋषि – आरूनि, श्वेत केतु
पांचाल : आध्यात्म व ब्राहमण विद्या का केन्द्र था।
4. विदेह : यह उपनिषद् काल का प्रमुख राज्य था। इसके राजा जनक याज्ञवल्क्य मुनि के संरक्षण में थे।

शासन

1. अब राजा सारी प्रजा का स्वामी होता था। लेकिन ब्राहमण इससे परे थे जो सोम को अपना राजा मानते थे।
2. राजा का प्रधान कार्य : सैनिक व न्याय सम्बन्धी था।
3. राज्याभिषेक : वाजपेंच में यज्ञ होता था न कि राजसूप यज्ञ में।

उपाधि

1. पूर्व के राजा : सम्राट
2. दक्षिण के राजा : भोज
3. पश्चिम के राजा : स्वराट
4.उत्तर के राजा : विराट

2. ग्रामिणी व सूत : सर्व साधारण वर्ग चुने जाते थे। क्षत्रिय व ब्राहमण वर्ग थे। इनकी उपाधि राजा कर्ता अर्थात राजा बनाने वाली थी।
3. उत्तर वैदिक काल में पूरोहित, सेना की व ग्रामिणी दूत जैसे अधिकारियों के अलावा संग्रहितु कोषाध्यक्ष, भागदुध–कर संग्राहक, सूत–रथवाहक, क्षत्र अक्षावाप–जुरू का निरीक्षक, गोपिकर्तन–आलेख में राजा का साथी
पालागल–दूत : जैसे कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है।
सचिव : नामक उपाधि का उल्लेख भी मिलता है।
4. बलि व शुल्क दो मुख्य कर थे।
5. स्थपति : बाहरी क्षेत्रों का प्रबंधकर्ता व शतपति नौ गांवो के समूह की देखभाल करने वाला नामक अधिकारियों का भी उल्लेख मिलता है।
6. जीव ग्रिम : सम्भवतः पुलिस अधिकारी
7. ब्राहय : वे मगध के निवासी थे। यद्यपि ये आर्य थे तथापि ब्राहमण धर्म को नहीं मानते थे।
9. निषाद : ये आर्य थे।

धर्म

1. प्रजापति : सर्वश्रेष्ठ देवता
2. विष्णु : ये ऋग्वेद के समय सूर्य लोक के देवता थे।
उत्तर वैदिक काल में विष्णु ने मानव जाति को मुक्त करने वाले और देवताओं के रक्षक के रूप में वरूण का स्थान ले लिया और स्वर्गीय देवों में सबसे महान थे। उत्तरी वैदिक काल के अंत में ये वासुदेव के रूप में जाने लगे।
1. अधिवर्यु : यर्जुवेद के स्वंतत्र गद्य मंत्रो के गायक को अधिवर्यु कहते थे। ये पुरोहित यज्ञ में हस्त सम्बन्धी आवश्यक कार्य भी करते थे।
सामवेद के अधिकांश विषय ऋग्वेद के हैं।
2. ब्राहमणग्रंथ : गद्य ग्रंथ

ये रचनायें प्रार्थना और यज्ञ की कृपा से सम्बन्ध रखती है। इनमें विश्व की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की कहानियों पौराणिक कथा और गाथाएं है।

3. आख्यक : ये ब्राहमण ग्रंथो के परिशिष्ट हैं। लेकिन ये बडे–बडे यज्ञो को सम्पादित करने वाले विस्तृत नियमों की अपेक्षा धार्मिक रीतियों के लाक्षणिक महत्व और संहिता ग्रंथो के रहस्यपूर्ण अर्थ से अधिक सम्बन्ध रखते हैं।
4. शुकृति अथवा वैदिक साहित्य : चारो वैदिक ग्रंथ ब्राहमय, आख्यको व उपनिषदों को मिलाकर वैदिक साहित्य कहा जाता है।
5. वेदांग : वैदिक साहित्य की रचनाओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित सहायक ग्रंथो को वेदांक कहते हैं।

6. स्मृति : वेदांग को स्मृति अथवा सूत्र भी कहते हैं।
7. ऋग्वेद में केवल एक बार राज्य शब्द का एवं 27 बार जन शब्द का प्रयोग किया गया है।
8. ऋग्वेद में वंशानुगत शासन प्रथा प्रचलित नहीं थी।
9. वियोग प्रथा : ऋग्वैदिक काल से।
10. वशिष्ठ : मित्र+वरून के वीर्य से पैदा हुए थे।
11. बल्बूथ व तरूअ दास सरदार थे।
12. शुद्र शब्द का प्रयोग एक शुद्र नामक गुलाम कबीले के आधार पर किया गया।

उत्तर वैदिक काल

1. उत्तरवैदिक कालीन कृतियों में दो समुन्द्रो हिन्द महासागर व अरब सागर का उल्लेख मिलता है व हिमालय का भी अप्रत्यक्ष रूप से/विंध्य पर्वत का भी
2. उत्तर वैदिक साहित्य में सैप्त सैन्धव क्षेत्रों का बहुत ही कम उल्लेख मिलता है।
3. भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार की स्थापना
4. हलो में 6–8–12–24 बैलो को जोता था।
5. गेंहू जौं प्रमुख फसल थी।
6. धातु गलाने की तकनीक विकसित हुई।
7. आर्यो ने भी सबसे ज्यादा तांबे का ही उपयोग किया।
8. महाजनी प्रथा के कुशीदकृति का पहली बार उल्लेख शलपथ ब्राहमण में मिलता है।
9. शुद्र वर्ग के प्रायः सभी लोग मजदूर थे। उच्च वर्ग के लोगो गुलामों के रूप में शुद्रो को नहीं अपनाया था।
10. चारो वर्गो के आपसी खानपान पर अभी भी प्रतिबंध नहीं गया था।
11. इस काल में सभी नामक कवीताई परिषद् में औरतो के भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।
12. भागदुध : यह उपज के हिस्से को कर के रूप में वसूल कर द्वारा वसूली जाती थी। इसीलिए शायद राजा को को विषमात्रा कहा गया है।
13. संग्रहित : यह शाही खजाने का प्रभारी था।

जैन धर्म

दत्त चौधरी मजूमदार

1. मदखलि पुत्र पोशाल ने महावीर–सिद्धार्थ के भ्रमण काल में 06 वर्ष तक उनका शिष्य बनकर उनके साथ रहा। बाद में यह साथ छोड़कर आजीवक सम्प्रदाय का नेता बन गया।
2. परिव्राजक : जैन व बौद्ध धर्म के अनुयायियों को परिवाजक कहा गया है।
3. निर्ग्रन्थ : जैन धर्म के पहले को
4. पूर्ण : महावीर द्वारा दिये गये मौलिक सिद्धान्त प्राचीन ग्रंथो में है जिन्हें पूर्ण कहा जाता है।

बौद्ध धर्म

1. अशोक के सम्मनदेई अभिलेख से बुद्ध के जन्म स्थान का संकेत मिलता है।
2. बुद्ध का चचेर भाई देवदत्त जो कुछ दिनो बाद बुद्ध से अलग हो गया था एक प्रतिद्वन्दी सम्प्रदाय की स्थापना किया था।
3. 1. बौद्धो ने जैनो की भांति आत्मा को अंग नहीं माना।
2. वस्त्रत्याग में विश्वास नहीं करते थे।
3. कायाक्लेष व कठिन तपस्या में विश्वास नहीं करते थे।
4. ज्ञान प्राप्त महात्मा का आदर करते थे।
4. जैन : जैन प्राचीन देवदताओं की पूजा व ब्रहामणों की सेवा का पूर्णतः बहिष्कार नहीं किया था।
5. जैनी : जीव जन्तु जल आदि सभी में आत्मा मानते थे।

समानता

1. दोनो पुर्नजन्म व कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते थे।
2. दोनो वेदो व पुरोहितों को नहीं मानते थे।
3. बौद्ध धर्म में भी अवतार की कल्पना की गई है।
4. चीन में बौद्ध धर्म को ले जाने का श्रेय काश्यथमातना को दिया जाता है।
5. पालिबौद्ध ग्रंथ : ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में संग्रहित किये गये थे।

मौर्यवंश

दत्त चौधरी मजूमदार

1. चन्द्रगुप्त की चाणक्य से प्रथम मुलाकात विंध्य के जंगल में हुई थी। चाणक्य ने भूमि के गर्भ से प्राप्त कोष से चन्द्रगुप्त के लिए एक सेना तैयार किया।
2. वम्बमोरियर : इसका तात्पर्य नवे मौर्य राजा अर्थात चन्द्रगुप्त से है। तमिल अनुभूति से ज्ञात होता है कि बम्ब मोरियर दक्षिण में तिनेवेली तक गया था।
3. बिन्दुसार जन मृत्यु शैय्या पर था उस समय अशोक उज्जैन मालवा का शासक था।
4. अशोक की महत्वपूर्ण उपाधियों देवाननपिय व प्रियदर्शिन नामक उपाधियों को उसके पूर्वजो उत्तराधिकारियों व समकालीन राजाओं जैसे श्रीलंका नरेश ने भी धारण किया था।
5. अशोक के अभिलेखों की कोई प्रति अभी तक बंगाल में नहीं मिली है।
6. कृष्ण की राजतंरगिणी अशोक को शिव का उपासक बताती है।
7. धर्म महामात्रो की नियुक्ति मुख्यतः धर्म बुद्धि करने के लिए की गई थी। ये राजधानी पाटलिपुत्र बाहय नगरों तथा साम्राज्य के पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी सीमाओं पर किये गये थे।

1. अशोक : अशोक ने जो कुछ किये उससे संतुष्ट न होकर, उसने अपने पुत्रों और अन्य वंशाओ को नये देश जीतने की बात की भूल जाने को कहा तथा शांति और लघुदंडता में आनंन्द की अनुभूति करने और धर्म विजय को सच्ची विजय समझने के लिए कहा।

2. अशोक ने कहा कि धर्म विजय की उसकी नीति आश्चर्य जनक सफलता पायी और उसने अपने पड़ोसी यूनानी, तमिल और सिंहलक राज्यों को आध्यात्मिक रूप से जीत लेने का दावा किया।

इन राज्यों में से कुछ में लोक हितकारी संस्थाये स्थापित करवायी।

3. लंका की अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि सुवर्ण भूमि दक्षिणी बर्मा व सुमात्रा में भी दूत मंडल भेजे गए थे।

4. अशोक ने बुद्ध के जन्म स्थान पर पूजा किया था।

5. अशोक ने बुद्ध को भगवान कहा है।

6. सर्व साधारण जनता को अशोक ने जो आशा दिखाई वह सम्बोधि या निर्वाण की नहीं थी। प्रत्युत स्वर्ग और देवताओं के साथ मिलने की आशाा थी।

7. अशोक अपने लेखो में चक्षुदान आध्यात्मिक अंतदृष्टि को काफी महत्व दिया है।

8. ऐसा मालुम पड़ता है कि अशोक पहले धर्मनियमों के पालन को महत्व देना था लेकिन अपने जीवन के अंतिम काल में वह ध्यान पर अधिक महत्व देता था।

9. समाज से तात्पर्य उत्सव से है।

10. अशोक के धम्म सम्बन्ध व दान व कल्याणकारी कार्य : में उसकी एक रानी कासबाकी ने विशेष महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

उत्तर कालीन मौर्य

1. कुणाल : पुराणों के अनुसार अशोक के बाद उसका पुत्र कुणाल राजा बना। यद्यपि राजतरंगिणी इस राजा का उल्लेख नहीं करती।
   राजतरंगिणी : अशोक के एक अन्य पुत्र को कश्मीर का शासक का बताती है। कुल मिलाकर सम्भव यही प्रतीत होता है क अशोक की मृत्यु के बाद इसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया और उसके पुत्रों के मध्य बंट गया।
2. अभिलेखों में उल्लिखित अशोक के एक मात्र पुत्र तीवर को शायद अपनी पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिला था।
3. सम्प्रति : कुणाल के पुत्र सम्पत्ति का उल्लेख ब्राहमण, जैन व बौद्ध सभी ग्रंथ उल्लेख करते हैं। जैन अनुभूति के अनुसार यह जैन धर्म का फालोवर था। लेकिन भागवत पुराण को छोड़कर कोई भी सम्पत्ति को कुणाल का पुत्र नहीं बताते।
4. दशरथ : इसने नागार्जुन पहाड़ियों पर अपने तीन अभिलेख छोड़े हैं।
5. शालिशूक : इसे ज्योतिष ग्रंथ गार्गी संहिता ने दुष्ट व कल प्रिय राजा बताया है।
6. मौर्यवंश कुल मिलाकर 135 वर्ष तक राज्य किया।

अतियोकस सिरीया नरेश

अंतियोकस प्रथम : बिन्दुसार
अंतियोकस द्वितीय : अशोक
अंतियोकस तृतीय : अशोक के उत्तराधिकारी

2. तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के अंत में काबुल की घाटी सुभागसेन नामक राज्य के अधीन थी। इसके बाद में अंतियोकस तृतीय भारत पर चढ़ गया और समयसेन से असंख्य हाथी और उपहार ले गया।

3. अभिलेखों से ज्ञात होता है कि मात्र अशोक व उसके उत्तराधिकारी को दशरथ ने देवांनाम्प्रिय की उपधि धारण किया था।
4. अशोक ने अपने वंशजो को आक्रमणभूनिक युद्ध न करने का आदेश दिया था।
5. राजतंरगिणी : ने धर्माचरण व दान व परोपकारिता के लिए अशोक की प्रशंसा किया है।
6. पुण्यमित्रशुंग द्वारा ब्रहद्रथ की हत्या का वर्णन हर्षचारित का लेखक बान ने किया है।
7. महामात्रों के पंचवर्षीय व त्रिवर्षीय दौर का मुख्य कारण प्रांतीय अधिकारियों के अत्याचार को रोकना था।

मौर्यकालीन दशा व व्यापार

1. द्वैराज्य : जब राजा अपने वंश के किसी राजकुमार या सरदार को शासन के काम में सहवर्गी या अधीन सहयोगी बना लेता था तो इस प्रथा को द्वैराज्य कहा जाता था।
2. स्थनीय शासन, वैधानिक कार्य, ग्रामीण क्षेत्रों में न्याय सचांलनो में शासन विकेन्दित था।
3. मौर्य नरेश : दैवीपद के लिए दावा नहीं करते थे।
4. अर्थशास्त्र में भी महामात्र व युक्त नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है।
5. वैश्य व यवन भी राज्य के उच्चतम पदों पर नियुक्त किये जाते थे।
6. सेना में मुख्यतः 6 भाग थे एक–एक भाग का 5–5 सदस्यों वाली छः समितियां करती थी। नौसेना, यातायात और रसद विभाग, पदाति सेना, अश्व सेना, रथ सेना व गज सेना
7. भाग : भूमिकर जो भाग कहलाता था उपज का साधारणतः 1/6 भाग था। लेकिन विशेष परिस्थिति में यह उपज का 1/4 से 1/8 तक हो जाता था।
8. ग्रीक लेखको के अनुसार सम्पूर्ण भारत राजा की सम्पत्ति है और कोई भी व्यक्ति भूमि को अपना समझकर नहीं रख सकता।
9. भूमि की नाप भी की जाती थी।,
10. बलि सम्भवतः भूमि पर अतिरिक्त कर था।
अन्यकर : व्यापार कर, बेगारकर, जन्म व मृत्युकर, अर्थदण्ड, विक्रय कर, चरागाहकर आदि।
2. सुदर्शन झील : काठियावाड में है।
3. चन्द्रगुप्त ने दूरी निर्देशक पत्थरों के साथ राजपथों का निर्माण करवाया था। अशोक ने उन पर छायादार वृक्ष तथा कुंए खुदवाये थे।
4. राजा की उपाधि सांमद पद व अधीनता की सूचक थी।
5. अशोक के समय से राजुकों को अपने क्षेत्र में स्वायत्त शासन करने का अधिकार था।
6. प्रयण : विशेष आवश्यकता पडने पर जनता राज्य को प्रीतिकर देती थी। जिसे प्रयण कहा जाता था। इसका उल्लेख शक राजा रूद्रदायन अपने अभिलेखों में विशेष रूप से करता है।

समाज

1. चारो आश्रमों की विधिवत् स्थापना
2. गौतमी पुलू शातकर्णी ने चार्तुवर्ण्य की पुनः स्थापना किया था क्योंकि यह संमतापन्न हो गयी थी।
3. मौर्ययुग में विवादित स्त्रियों को अपने पति के साथ धार्मिक ग्रंथो के ज्ञान प्राप्ति की सुविध नहीं दी गयी थी। यद्यपि वे अपने पति के साथ धार्मिक कार्यों में भाग अवश्य लेती थी।
4. स्त्रियों का क्रय विक्रय होता था।

व्यापार

1. ईसापूर्व प्रथम शताब्दी–100 बी0सी0 : में भारत और रोम साम्राज्य के बीच सम्पर्क स्थापित हो चुका था। जबकि ई0 सन् 100 ए0डी0 की प्रथम शताब्दी में चीन, यूनानी जगत, लंका और दूरस्थ भारत के साथ होने वाले सम्बन्ध का उल्लेख हमें अभिलेखों तथा साहित्य में मिलता है। मुख्यतः नागार्जुनकोडा अभिलेख मिलिन्द में
2. धरण या पुराण : मानव धर्म शासन में 32 स्त्रितयों 58.56 ग्रेन के चांदी के सिक्कों को धारण या पुतन कहा गया है।
3. बडे पैमाने पर भारत की बनी मलमल का ई0 सन की प्रथम सदी में रोमन साम्राज्य को निर्यात होता था। सर्वोत्तम मलमल उस समय गंगा की तराई में बनती थी। अर्थशास्त्र में उजले और कोमल मलमल के लिए पूर्वी बंगाल व गंगा का डेल्टा प्रसिद्ध है।

धर्म

1. वैदिक देवताओं की पूजा अभी बंद नहीं हुई थी। इन्द्र और वरूण की पूजा होती थी।
2. कर्रियस लिखता है कि पोरस की सेना के सामने हेराम्लीज की मूर्ति लायी गयी थी। जिसका सम्बन्ध वासुदवे या संकर्षण से लगाया जाता है।
3. मौर्य द्वारा शिव, स्कन्द और विशाल की मूर्तियों में प्रदर्शन और विक्रय का उल्लेख पतंजलि ने किया है। इस युग में वैदिक यज्ञ भी प्रचुर मात्रा में सम्पादित किये जाते थे।

साहित्य

दत्त चौधरी मजूमदार

प्रशासन

1. संधिविग्रहिक : गुप्तकाल में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण मत्री था। यही केन्द्रीय प्रशासन का सर्वेसर्वा होता था।
2. कुमारामाल्य : अधिकारियों के एक विशेष वर्ग को कुमारामाल्य कहा जाता था। वे शांति और युद्ध के मंत्री, सेनानायक, सभासद समझे जाते थे।
3. ओर्लेनायगम : चोलो–राजाओं के समय में दक्षिणी भारत में इस अधिकारी का उल्लेख मिलता है। जिसे राजा के दिये हुए प्रत्येक निर्देश की स्वीकृति देनी पड़ती थी।
4. भोट्ट विष्ट : तिब्बत को सीमा पर प्रचलित एक विशेष प्रकार की बेगार प्रथा।

धर्म

1. छठी व सातवी शताब्दी में शौव धर्म ने उत्तरी भारत में राजकीय धर्म के रूप में वैष्णव धर्म का स्थान ग्रहण किया। मिहिरकुल, यशोधर्मन, शशांक और हर्ष जैसे शासन शौव थे।
2. शंकराचार्य शौवोपासक थे।

चारमढो की स्थापना :–

1. द्वारिका –काठियावाड़
2. श्रंगेरी – मैसूर
3. कुटी – उडीसा
4. बदरीनाथ

शंकराचार्य द्वारा स्थापित धाम प्रसिद्ध है।

1. वासवकेन : किंगायत या वीरशैव सम्प्रदाय की एक विशेषता सामाजिक सुधार के लिए इसका उत्साह और कठोर प्रथा के बंधन से स्त्रियों को मुक्त करने के लिए विशेष उत्कंढा थी।
वासव : कल्याण के कलचुर्य राजवंश के एक जैन राजा विष्जल का मंत्री था जो 12 वी सदी के मध्यकाल में था।
2. नाथमुनि, यमुनाचार्य आदि वैष्णव थे। रामानुज ने कांची और श्रीरंगम को अपने कार्य का प्रधान केन्द्र बनाया था। लेकिन चोलो से शत्रुता के कारण इन्हें होयसोक राजदरबार में शरण लेनी पड़ी थी।
ग्रीवैष्णव : रामानुज के अनुयायी श्री वैष्णव कहे जाते हैं।
3. गुप्त तथा प्रारम्भिक/चालुम्य राजाओं के बाद अश्वमेघ यज्ञ का प्रचलन बन्द हो गया था।

प्रारम्भिक भारत के स्मृति चिन्ह

1. गंधार कला की मूर्तियां : काले पत्थर से बनायी गई है।
2. 200 बी0सी0 से 320 बी0सी0 तक का काल मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है। यह भवन निर्माण कला में उतना सम्पन्न नहीं है।
3. भीतरगांव–गुप्तकाल का मंदिर इंटो से निर्मित है।
4. द्रविडकला की शुरूआत पल्लवकाल से होती है। सर्वाधिक उल्लेख भी यह है कि द्रविड कला शिख शैली जावा, कम्पोडिया, वियतनाम के मंदिरो में पायी जाती है।
इसकी मुख्य विशेषता शिखर व स्तम्भ है। स्तम्भ उत्तर भारतीय शैली के मंदिरो में नहीं पाये जाते है।
5. चोल कलाकारों ने दैत्यो की तरह कल्पना की और जौहरियों की तरह उसे पूर्ण किया।
6. एलीफेंटा बम्बई के निकट नाम द्वीप की गुफाएं ब्राहयन देवताओं की मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है।
7. त्रिमूर्ति : गोमतेश्वर प्रतिमा : यह जैन मूर्ति है जिसका निर्माण होयसुंग के शासनकाल में एक मंत्री चामुंड राय के किया था।
8. प्राचीन भारत में कला धर्म की दासी रही है।

जैन व बौद्ध धर्म

1. छ महानगर जिनका सम्बन्ध गौतमबुद्ध के जीवन से था : चम्बा, विहार, राजग्रह–पटना, साकेत, कौशाम्बी, बनारस, कुशीनगर
2. गहपति : भू–स्वामी – प्राचीन काल में गहपति शब्द से किसी महत्वपूर्ण यज्ञ के अवसर पर अतिथि की सेवा करने वाले व्यक्ति और प्रमुख पालक का बोध होता था। लेकिन बौद्ध युग में इससे ऐसे व्यक्ति का बोध होता था जो किसी भी जाति के एक विशाल वित्तसत्राशन परिवार का मुख्या होता था जिसे धन के कारण सम्मान मिला हो। प्राचीन बौद्ध ग्रंथो में बार–बार गहपतियों का उल्लेख मिलता था जिसमें मेण्डक नामक गहपति का उल्लेख मिलता था।
3. उच्छेदवाद : भौतिकवाद–इसके प्रवर्तक अजितवेश थे।
4. पकुघकच्यापन : सभी तत्व नश्वर है।
5. आजीवक सम्प्रदाय : महाबलि पुत्र गोसाक यह सुरापान कर नग्न घूमता था और निरंकुश यौन साधन में लीन रहता था।
6. पार्श्वनाथ : सातवी सदी में थे।

7. महात्मा बुद्ध को गया में निरंजना नदीं के तट पर वट वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ।
8. बुद्ध ने मांस भक्षण पर रोक नहीं लगाई थी। जबकि महावीर ने लगायी थी।
9. कृषिकर्म को बुद्ध ने प्रोत्साहित किया–जैन धर्म में प्रतिबंध था।
10. बुद्ध ने समुद्र यात्रा को स्वीकृति प्रदान की।
11. बौधायन में समुंद्र यात्रा की भरसना पापकर्म के रूप में किया है।

1. ब्राहमण ग्रंथो में होटलो में खान पान पर प्रतिबन्ध था। जबकि बुद्ध ने ऐसा नहीं बल्कि होटलो को प्रोत्साहित किया।
2. ब्राहमणवादी विधि निर्माता – वेश्याओं की भर्त्सना कता है। जबकि संघ प्रवेश में वेश्या भी प्रवेश कर सकती थी।
3. जैन व बौद्ध दोनो जाति व्यवस्था का निर्मूलन नहीं करना चाहते थे। दोनों ने जाति प्रथा को स्वीकार किया।
4. जैन व बौद्ध शिक्षा तथा शिक्षणों चारो वर्णो के यहां से शिक्षा ग्रहण तथा भोजन कर सकते थे।
5. जैन व बौद्ध दोनो में कर्जदार व दास का प्रवेश वर्जित था।
6. अश्वप्रथा : का खंडन दोनो ने नहीं किया बल्कि अपनाया था। क्योंकि चांडालो का अछूत माना गया है।
7. यद्यपि दोनो धर्मों ने दासों की दशा को सुधारने का प्रयास अवश्य किया था।
8. समवेत अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनो धर्मों ने समाज में प्रचलित भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। अलबत्ता निर्माण के विषय में समानता अवश्य थी।

मौर्य वंश

1. तारानाथ : 16वीं शताब्दी में भारत यात्रा किया था। उसने लिखा है कि बिन्दुसार ने दो समुंद्रो के बीच की भूमि जीत ली थी।
2. अशोक ने अपनी पुत्री का विवाह नेपाल के एक राजपुत्र से किया था।
3. अर्थशास्त्र में गोप, स्थानिक, धर्मस्थ, नागरक नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है।
4. शहीजमीन को अवकाश प्राप्त अधिकारियों तथा पुरोहितों को भूमिखंड के रूप में प्रदान किया जाता था। लेकिन ग्रहीता को भूमि बेचने, बंधक रखने अथवा दूसरे को देने का अधिकार नहीं था।
5. पण्याध्यक्ष : वाणिज्य अधीक्षक – यह वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करता है और जब किसी वस्तु की भरमार हो जाती थी तो वह हस्तक्षेप भी करता था।
   संस्थाध्यक्ष : बाजार अधीक्षक : यह व्यापारियों व दुकानदारों के शोधन, मिलावट आदि से जनता की रक्षा करता था।
6. मौर्य युग में बलि व कर नामक दो अन्य कर थे। हिरण्य नामक कर जिन्स के रूप में नहीं नकद लिया जाता था।
   प्रयण–स्नेहोपहार : यह संकटकालीन कर था।
7. खनन व धातुकर्म पर राज्य का एकाधीकार था।
8. विशिष्ट बंधक : यह सरकारी अधिकारी था। जो बेगार लेता था या दलाल के रूप में मजूदरों के मध्य कार्य करता था।
9. अहिताक : विशेष परिस्थितियों में उच्च वर्गों में लोगो को भी बंधक अथवा दास बनाया जा सकता था जिसे कौटिल्य ने अहिताक कहा है।

10. कौटिल्य शुद्रो को दंण्डित करने का प्रावधान किया है।

1. कौटिल्य ने वैदिक जीवन पद्धति का यशोगान किया है। अर्थशास्त्र में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि मंदिरो में विभिन्न देवताओं की पूजा होती थी।
2. हेताक्लस : इसकी पूजा मथुरा में होती थी। यही देवता आगे चलकर कृष्ण के रूप में नाम से पूजा गया।
3. कौटिल्य : ने बौद्धो जैनो व आसीवको को बृषल तथा पाखंड कहा है।
4. अशोक की धम्म निती का लक्ष्य था कि लोगो में सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना जगाना तथा उसने मानव की गरिमा को प्रतिष्ठिता करने पर अत्यधिक बल दिया।
5. अशोक के धम्म के मूल सिद्धान्तो में सहिष्णुता का प्रमुख स्थान था।
6. यद्यपि अशोक ने महोत्सवो व सभाओं पर सामाजिक सहिष्णुता बनाये रखने के लिए प्रतिबंध अवश्य लगाया था। लेकिन उसने राजकीय सभाओं व महोत्सवों पर प्रतिबंध नहीं लगाया था।
7. अशोक धार्मिक अनुष्ठानों व यज्ञों पर भी प्रहार किया। क्योंकि पुरोहित इनका संचालन करते थे और जनता के अंधविश्वास से लाभ उठाते थे।
8. यद्यपि अशोक ने पशुवध पर निषेध लगाया था लेकिन उसका यह राज्यादेश राज्य द्वारा संरक्षित पशु क्षेत्रों पर ही लागू था। यह भी संभव है कि अशोक केवल यज्ञानुष्ठानों में पशु बलि की प्रथा पर रोक लगाना चाहता था और सामान्य रूप से पशुओं को मारने पर रोक लगाने की उसकी मंशा नहीं थी। क्योंकि उसने खुद कहा है कि शही महल के रसोईघर में रोज दो मोर एक हिरन मारा जायेगा।

1. याज्ञिक अनुष्ठानों में पशुबलि पर रोक लगाने के बावजूद अशोक पूरी तरह हिंसा का त्याग नहीं किया। क्योंकि जंगली जातियों के विरूद्ध व बल प्रयोग व हिंसा के प्रयोग की धमकी देता है।
2. अशोक अपने शासन के दस साल बाद शाही यात्रा का आरम्भ कर बौधगया की यात्रा करके आरम्भ किया था।
3. अशोक के धम्म महामात्र : धम्म नीति को लागू करवाते थे। साथ–साथ अन्य सरकारी पदाधिकारियों व राजकीय कोषों को भी नियंत्रित करते थे।
4. अब तक अशोक के 14 राज्यादेश प्राप्त हो चकु हैं।
5. अशोक के समय में तक्षशिला में पुनः विद्रोह हुआ था जिसको दबाने के लिए कुणाल को भेजा गया था।
6. अशोक के बाद साम्राज्य दो भागो में बट गया। पश्चिमी व पूर्वी। पश्चिमी भाग पर कुणाल ने शासन किया।
7. मौर्य साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण आर्थिक था।

मौर्यत्तर काल

1. मथुरा के सहका नामक विशेष वस्तु का उल्लेख पंतजलि ने किया है।
2. महायान : मध्य एशिया, तिब्बत, चीन, जापान, हीनयान, श्रीलंका, बर्मा, दक्षिणी पूर्व एशिया
3. लिंग पूजा : हिन्दुओं ने प्रथम सदी में अपनाया।
4. गीता रचना काल : 200 बी0सी0
5. अध्वघोष : संस्कृत का प्रथम नाटककार माना जाता है।

6. सात वाहनों ने भी प्राकृत भाषा अपनाया।

गुप्तकाल व गुप्तोत्तरकाल

कृषिदास प्रथा – इसका तात्पर्य है कि वृत्तिभोगियों ग्रहीता को जमीन दे देने के बाद किसान उनकी जमीन से जुड़े रहते थे। यह प्रथा सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में शुरू हुई थी। जिनका सर्वप्रथम उल्लेख पल्लव अभिलेख में मिलता है।
2. भारतीय रोमन व्यापार में रेशम, घी, मसाले प्रमुख थे।
3. मंदिरो में वेश्याओं के रहने का सबसे पुराना साक्ष्य स्मभवतः अशोक के कुछ ही दिनों बाद बनारस से 160 मील दक्षिणी रामगढ़ में उत्कीर्ण गुप्ता अभिलेख से मिलता है।
4. इस काल में महिलाओं को शिक्षा के अधिकार वंचितर कर दिया गया।
बाल विवाह व सती प्रथा से धर्माध्यक्षों ने मान्यता प्रदान किया।
5. शैव व बौद्ध धर्म में अवतार वाद व भक्ति की कल्पना की गयी है। बौद्धो में मैत्रेय अवतार लेगे। शैव धर्म में 28 अवतार माने गये हैं।
6. लक्ष्मी व विष्णु का पति पत्नी के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख स्कन्द गुप्त के एक अभिलेख में मिलता है।
7. पार्वती व शिव के विवाह का उल्लेख कुमार गुप्त के अभिलेख में मिलता है।
8. गुप्तकाल में वैष्णव धर्म की भांति शैव धर्म को भी राजकीय सरंक्षण प्रदान किया गया था। नचनाकुठार मन्दिर व नागोद कुंज मन्दिर थे दोनो सर्वश्रेष्ठ मन्दिर थे।
9. गुप्तकाल में नागार्जुन, असंग, आर्यदेव, वसुवेध, दिनांर आदि मधयान शाखा के आचार्य थे। महायानी – वेधिसल्व, मूर्ति पूजा, भक्ति पर जोर देते थे। इसी मधयान शाखा से वज्रयान का विकास किया था।
1. वात्स्थ्यायन : चौथी सदी – ये न्यायदर्शन से सम्बन्धित थे।
   प्रशस्तपाद – व्याख्यता – ये वैशेशिक दर्शन भौतिक वाद
   ईश्वरकृष्ण – व्याख्यता – साक्ष्य
   व्यास – योग
   शवरस्वामी – मीमसा – इस दर्शन के द्वारा वेदों को पुनः पुतिष्ठित करने का प्रयास किया गया।
   वादरायन भौजवाद : वेदान्त या उत्तर सीमान्त
2. गुप्तकालीन चित्रकला का अवशेष
वाघ की गुफाओं, अजंता की गुफा एवं बादामी की गुफा में मिलता है।
3. पंच सिद्धान्तिक : बराहमिरि –खगोलविज्ञान, पंचाग विज्ञान बरात मिहिर

उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा

800–1200 ई0पू0 तक

गुर्जर प्रतिहार वंश : कन्नौज
1. संस्थापक, नारभट्ट प्रथम – ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसने अरबो को सिंध से आगे बढने से रोकने में सफलता पायी थी।
2. मिहिर भोज '836–882' इसने कन्नौज को राजधानी बनाया। इसके शासनकाल में अरबयात्री सुलेमान आया था। यह वैष्णव अनुयायी था तथा आदि बराह की उपाधि धारण किया था।

3. महेन्द्रपाल '835–910' इसकी राज्यसभा में राजेश्वर उसके राजगुरू थे। राजेश्वर ने कर्पूरमंजरी, काव्यमीमांसा, भुवनकोष, विदृशालभंजिका, बालरामायन, हरविकास की रचना किया।
4. गुर्जर प्रतिहार के बाद कन्नौज में गहडवालवंश की स्थापना हुई।
5. गुजरात के चालुक्य, जेजामभुक्ति के चंदेल, ग्वालियर के कच्छपद्यात, त्रिपुरी के कलचुरी, मालवा के परमार, राजस्थान के गुहिक, शाकम्भरी के चौहान आदि, प्रतिहारों के सामंत थे जिन्होने अपनी स्वतंत्रा घोषित कर दी।

गहड़वाल का राठौर वंश

राजधानी–कन्नौज
1. संस्थापक : चन्द्रदेव '1085–90'' के मध्य
2. गोविन्दचन्द – '1114–1165'
इसे विविध विद्या विचार वाचस्पति कहा जाता है।
3. अजमेर
शाकम्भरी का चाहवान वंश
1. संस्थापक – वासुदेव, राजधानी अजमेर
2. अजयराज इसने अजमेर नगर बसाकर अपनी राजधानी बनाया।
3. विग्रहराजचर्तुथ : इसे वीसलदेव के नाम से भी जाना जाता है। सोमदेव इसके दरबार में निवास करता था।
4. पृथ्वीराज तृतीय – 1177–1192 : रायपिथैरा
1. इसने चंदेल शासक परमार्दिदेव को हराया।
2. गुजरात के चालुक्य शासक ने भीम को हराकर मार डाला।
कवि : जयानकभट्ट, विधापति गौड, पृथ्वीभट्ट जनार्दन विश्चरूप, नागीश्वर निवास करते थे। चन्दरवाई उसका राजकवि था। पृथ्वीराज रासो – हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।
4. मालवा के परमार वंश : राजधानी धारा
संस्थापक : सीपक द्वितीय – इसके प्रारम्भिक नरेश राष्टकूट राजाओं के सामंत थे।
5. सम्पत्ति पुंज : 973–995 ई0 परमारो की कल्याणी के चालुक्यो की पुरानी शत्रुता थी।
1. इसने कल्याणी के चालुक्य नरेश टौल द्वितीय को छः बार पराजित किया जिसे सातवी बार युद्ध में बंदी बनाकर मार डाला गया। इसके दरबार में दशरूपक का लेखक धनन्जय पदमगुप्त इसका राज कवि था।
2. सिन्धुराज : राजकवि पंदमगुप्त
3. राजा भोज : उपाधि कविराज उदयपुर प्रशास्ति में इसकी राजनैतिक उपलब्धियों का वर्णन है। इसे चालुक्य नरेश जयसिंह व चंदेल विधाधर ने हराया था।
कवि : भोज ने स्वंय श्रृंगार मंजरी कृत्यकल्प तरू, तत्वप्रकाश आदि की रचना किया। यह प्रत्येक कवि को हर श्लोक पर एक लाख मुद्राये प्रदान करता था। इसने भोजसुर नामक तालाब भोजपुर नामक नगर तथा धारा के समीप सरस्वती मंदिर का निर्माण करवाया था।
5. जेजाफभुक्ति के चंदेल राजधानी खजुराहो उप महोवा संस्थापक हर्ष व यशोवर्धन
1. घंग : घंग ने अपनी राजधानी कांलजर के बदले खजुराहो को बनाया। इसे कन्नौज व कालंजर जीतने का श्रेय दिया जाता है।
2. विद्याधर : यह महमूद गजनबी से जयचंद के समर्पण के कारण, कन्नौज नरेश को दंडित करने के लिए भारतीय नरेशों का एक संघ बनाया था। बाद में यह महमूद से पराजित होकर उससे

संधि किया। इस प्रकार यह अकेला भारतीय नरेश था जिसने महमूद गजनवी की महत्वाकांक्षाओ का सफलता पूर्वक विरोध किया था।
3. परमार्दिदेव
4. खजुराहो के मन्दिर : शिव विष्णु व जैन है।
5. कलचुरि का चेदि राजवंश, राजधानी त्रिपुरी
1. संस्थापक : कोक्कल प्रथम
2. कर्ण देव – इसने कलिंग को हराकर त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि धारण किया था। इसने हुणराजकुमारी आवल्लदेवी से विवाह किया था। यह शैव था।
6. गुजरात के चालुक्य वंश : राजधर्म, राजधानी अनहिवाडा ये सभी जैन थे।
1. संस्थापक–मूलराज प्रथम
2. भीमदेव प्रथम : इसने महमूद द्वारा ध्वस्त सोमनाथ मंदिर का पुनः निर्माण कराया था। इसके सामंत विमल ने आबू पर्वत पर प्रसिद्ध दिलवाड़ा मंदिर का निर्माण करवाया था।
3. जयसिंह सिद्धराज : 1094–1193 : इसने सहत्रलिंग झील का निर्माण करवाया था। हेमचन्द्र इसका दरबारी था। वीरशिष्टपर्वत जैन ग्रंथो
4. मूलराज द्वितीय यह प्रथम नरेश था जिसने 1178 में आबू पर्वत के निकट मुहम्मद गोरी को पराजित किया था।

तुर्को का आक्रमण

1. इस्लाम का नेतृत्व : सर्वप्रथम अरबो के हाथ में पुनः इरानियों के हाथ में अंत में तुर्को के हाथ में आाय। तुर्क अरबो तथा इरानियों की तुलना में अधिक बर्बर थे। क्योंकि ये इस्लाम में नवीन अनुयायी थे जिससे इनमें धार्मिक जोश और मदान्धता अधिक थी। फिर भी तुर्क मंगोलो की भांति बर्बर नहीं थे।
राजधानी : गजनी : महमूद गजनवी : 971–1010 :
1. यह यामिनी वंश का था। सिक्खों पर अमीर महमूद सर्वप्रथम उसने सुल्तान की पदवी धारण किया। बगदाद के खलीफा से इसे उपाधि मिली थी।
2. आक्रमण का मुख्य कारण सम्पत्ति का लूटना था।
3. सरहेनरी इलियर के अनुसार महमूद ने भारत पर 17 बार हमला किया।

आक्रमण

1. प्रथम आक्रमण : 1000 ई0पू0 अंतिम 1027 ई0पी0 इस समय सिन्ध व मुल्तान में मुसलमानी राज्य थे। ब्राहमण हिन्दु शाही राज्य राजा–जयपाल ने पेशावर के निकट पराजित हुआ। आत्महत्या कर लिया।
2. पुनः कन्नौज, मथुरा, वृंदावन, मन्झावन ब्राहमणों का किला के नाम से विख्यात आदि को जीता।
3. विधाधर को पराजित किया चंदेल
4. 1025 में सोमनाथ को जीता। इस समय यहां का शासन चालुक्य राजा भीमदेव प्रथम था। इसने पुनः निर्माण करवाया।
5. अंतिम : 1027 जाटो को पराजित किया।

1. महमूद भारत में किसी भी हिन्दु राजा से पराजित नहीं हुआ।
2. इसने पंजाब सिन्धु और मुल्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया।
3. यह महान न्याय प्रिय था। लेकिन यह कुशल शासन प्रबंधक था।

4. इसके दरबार में अलवसनी, उतवी, वैहाकी, उजारी, तूसी, उन्सुरी तथा फिरदौसी निवास करता था।

गजनी में इसने एक विश्व विद्यालय, एक पुस्तकालय तथा एक अजायब घर स्थापित किया था।

मुहम्मद गौरी

राजधानी : गोर, वंश शासवनी तुर्क
लक्ष्य : भारत में एक साम्राज्य स्थापित करना। गजनवी तथा गोरो के मध्य भंयकर शत्रुता थी।
आक्रमण : 12वीं सदी में
1. गोरी के आक्रमण के समय केवल पंजाब पर गजनवी वंश का शासन था जिसका शासक खुसख था। शेष सिन्ध व मुसलमान अन्य मुस्लिम राज्य था।
2. आक्रमण के रास्ते दो प्रथम सबसे पहले गोरी भारत पर गोमल दर्रे से होकर सिन्ध तक पहुंचने का मार्ग अपनाया।
3. गोरी सर्वप्रथम 1175 में इसी रास्ते से मुल्तान पर आक्रमण किया और उसे सरलता से जीत लिया। लेकिन 1178 में उसे गुजरात के भूलराज द्वितीय से पराजित होना पड़ा। अतः उसने इस मार्ग को छोड़ दिया।
2. दूसरा मार्ग उसने पंजाब की ओर से अपनाया।
3. पंजाब से जीता खुसरो को पराजित किया।
4. तराईन के युद्ध में कुछ हिन्दु राजा पृथ्वीराज की सहायता किये थे। लेकिन पृथ्वीराज की महत्वकांक्षा के कारण उसकी अन्य प्रसिद्ध राजवंशो से शतुत्रता थी। क्योंकि वह चालुक्य शासक भूलराज द्वितीय, चंदेल शासक परमार्दिदेव तथा जयचन्द को पराजित कर चुका था।

गोरी ने पृथ्वीराज को मारकर उसके पुत्र को अजमेर का शासक बनाया।
5. इसके बाद गोरी दिल्ली, मेरठ, रणथम्मोर, वयाना, ग्वालियर को जीता।
6. बदायूं, वाराणसी तथा कन्नौज को ऐबक ने जीता
7. बंगाल शासक लक्ष्मण सेन तथा बिहार को इख्तियारूददीन बख्यियार खिलजी ने जीता। यद्यपि बंगाल का पश्चिमी कुछ भाग हीं जीता गया था। बिहार के नालंदा व विक्रमशील विश्वविद्यालयों को ध्वस्त किया गया। बंगाल में लखनौती को राजधानी बनाया गया।
8. 1206 में खोखरों के दमन के समय मृत्यु।

विशेष

1. गोरी आरम्भ में अपने विजित प्रदेशों में हिन्दु राजाओं को ही शासक नियुक्त किया।
2. 1193 में दिल्ली भारत में गोरी राज्य की राजधानी बनायी। गोरी ने मथुरा को नहीं जीता था और न ही आक्रमण किया था।
3. गोरी का एक उद्देश्य यह रहा कि हिन्दु राजा मिलकर कोई संगठन न बनायें। इसलिए वह इनका प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा। फिर भी वह मन्दिरो को ध्वस्त किया। धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया।
4. गोरी गजनी व गोर दोनो का शासक रहा।

सिन्धु सभ्यता

विस्तार, व्यापार व सम्बन्ध एवं उत्पत्ति

विस्तार : सिन्धु सभ्यता का विस्तार अफगानिस्तान, ब्लुचिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत में था। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण में 1400 कि0मी0 पूर्व में पश्चिम 1600 कि0मी0 थी।

इसका क्षेत्रफल लगभग 1299600 वर्ग किलो मी0 था वह अपनी समकालीन मिश्र तथा मेसोपोटामिया से अधिक विस्तृत थी। अब तक इस उप महाद्वीप में हडप्पा संस्कृति के लगभग 1000 स्थलों का पत्रा लगा चुका है।

उत्तरी अफगानिस्तान में : मुंडीगाक एवं सोर्तगुई पुरा स्थलों की खोज की गयी है।

ब्लूचिस्तान में अबर सागर के तट पर स्थित सुरकागेन्जेर एक महत्पूर्ण स्थल था। बाल्माकोह, सुरकाकोह भी ब्लुचिस्तान में थे।

पाकिस्तान : में खोजे गये सैंधव सभ्यता के पुरास्थलों में हड़प्पा मोहनजोदडो, चन्हूदडो, क्रोटदीजी, आमरी, रहमानढेरी आदि मुख्य है।

भारत के पंजाब प्रांत में रोपड़, कोटला, आदि मुख्य हैं। हरियाणा में बनवाली, मिलाथल, सिसबल, वारा आदि मुख्य है।

जम्मू कश्मीर – मांडा

राजस्थान – कार्लाभंगा

गुजरात – रंगपुर, लोचल, रोपड़ी, भगवतराव, सुरकोतवा आदि है।

महाराष्ट्र – दैमाबाद

पश्चिमी उत्तर प्रदेश – आक्रमण मीरपुर, मेरठ

निष्कर्ष – हडप्पा सभ्यता का विस्तार उत्तर में रूपठ से लेकर दक्षिण मं भगवराव तक, पूर्व में आलमगीरपुर से लेकर पश्चिम में सुरकागेन्डोर तक स्थित था।

इसमें छः मुख्य नगर थे और हडप्पा व मोहनजोदडो इस विशाल साम्राज्य की जुड़वा राजधानियां थी।

विशेष : अफगानिस्तान यद्यपि सिन्धु सभ्यता क्षेत्र में नहीं आता फिर भी यहां स्थल मिले हैं।

महानगर 6 महानगर

हड़प्पा, मोहनजोदडो, चान्हदडो, लोथल, बनवाली व सुरकोटडा

1. हडप्पा : प0 पंजाब में खुदाई में दुर्ग, रक्षा प्राचीर, 6–6 निवास गृह, चबूतरा, 6–6 अन्नागार आदि मिले हैं। समाधि आर–31 दुर्गा को माउंट आबू नाम दिया गया है।
2. मोहनजोदडो : सिन्धु, वृहत स्नानागार, अन्नागार, पुरोहितावास, महाविद्यालय, भवन अथवा सभाभवन। पुजारी का सिर व योगी की मूर्ति भवन निर्माण व सड़के।
3. लोथल : गुजरात – खम्भात की खाड़ी पर स्थित है। यहां से गोपीबाडे का संकेत मिलता है व चावन, धान
4. कालीबंगा : राजस्थाना–गंगानगर : मकान कच्चे ईंट के हड़प्पा व हड़प्पा पूर्व के संकेत, हलकुण्ड के निशान
5. सुरकोतहा : अश्व के संकेत
6. बनवाली : हिसार–बरियाल : चावल के हड़प्पा कालीन व हडप्पा पूर्व के संकेत।

व्यापार और सम्बन्ध
हड़प्पा सभ्यता

सिन्धु सभ्यता के लोगो के जीवन में बाहय तथा आन्तरिक व्यापार का अतिशय महत्व था क्योंकि यह ग्रामीण संस्कृति न होकर नगरीय संस्कृति थी। व्यापार की पुष्टि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और लोचल में बडे–बडे अनाज कोठारो के पाये जाने से ही नहीं होती बल्कि एक बड़े भू–भाग में ढेर सारी सीलों, एक रूपि लिपि मानकीकृत माप तौलो के अस्तित्व से भी होता है।

विनिमय पद्धति : नाव व बैलगाड़ी व इक्के से –

हडप्पा व मोहनजोदडो व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे यहां के व्यापारी मुख्यतः जलीय मार्गों से व्यापार करते थे। वे मैसूर से सोना, राजस्थान व ब्लूचिस्तान से तांबा, अजमेर से सरिया, कश्मीर व काठियावाड़ से बहुमूल्य पत्थर मंगाते थे।

सैन्धव निवासियों का भारतीय प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ भी व्यापारिक एवं सांस्कृति सम्बन्ध था। मध्य एशिया, उत्तरी पूर्वी अफगानिस्तान, इरान, बहरीन द्वीप, मेसोपोटामियां, मिस्र, क्रीट आदि देशो के साथ सैंधव निवासियों का घनिष्ट सम्पर्क था।

सैंधव निवासियों ने उत्तरी अफगानिस्तान में एक वाणिज्य उपनिवेश स्थापित किया था जिसके सहारे उनका व्यापार मध्य एशिया के साथ चलता था।

इसी तरह सुमेर बेबीलोनिया, फारस तथा अफगानिस्तान से हड़प्पा की मुहरो से मिलती जुलती मुहरै प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ो की एक मुहर तथा एक ठीकर के उपर सुमेरियन ढंग नावों के चित्र अंकित है। जिससे विदित होता है कि सैंधव लोगों का व्यापार इन नगरों से होता था। 2300 के आसपास व उनके आगे के मेसोपोटामियाई लेखो में मेलुहा के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की चर्चा है। मेलुहा का समीकरण सिन्धु प्रदेश से किया गया है। मेसोपोटामियाई लेखों में दो मध्यवर्ती व्यापार केन्द्रो का भी उल्लेख मिलता है। दिलमुन और मकन। बहरीन की खुदाई में कुछ मुहरें ऐसी मिली है जिस पर सैंधव लिपि में लेख अंकित है।

मेसोपोटामियां में प्रवेश के 32 प्रमुख बंदरगाह थे। यहां सैन्धव व्यापारी सोना, चांदी, तांबा, बहुमूल्य पत्थर, हाथी दांत, आभूषण, प्रशासन सामग्री लाते थे। लोथल की व्यापारिक गोदी का उल्लेख। मिस्र से हड़प्पा के प्रकार की गुरिया मिली है।

उत्पत्ति

सिन्धु सभ्यता कांस्यकालीन एवं नगरीय सभ्यता थी। इस सभ्यता के क्रमबद्ध विकास को दर्शाने में पुरातात्विक संस्कृति में विद्यमान थे। हड़प्पा की संस्कृति में क्रमबद्धता का अभाव है। उत्पत्ति अत्यन्त विवादास्पद है। इसके दो गत हैं 1. स्वदेशी मत 2. विदेशी मत

विदेशी मत : पश्चिमी पुराविद जैसे गार्डन, चाईल्ड, जान मार्शल, डी0एच0 गार्डन, मार्डिमरहवीलर आदि के मतानुसार सिन्धु सभ्यता, मेसोपोटामिया, सभ्यता से उत्प्रेरित था। इन दोनों सभ्यताओं में एक ही परिवार की सामग्री जैसे कांस्य लघुपाषाण उपकरण, चाक निर्मित मृदभाण्ड, भवन निर्माण में ईंटो का प्रयोग, लेखन कला का ज्ञान आदि।

साक्ष्यों में समानता का उल्लेख करते हैं।

आलोचना : सुमेरिया–मेसोपोटामिया की सड़के, स्नानागार आदि सैंधव जैस नहीं है। उपकरणों में भी असमानता है।

लिपि : सैंधव चित्राक्षर, समेुरियन की लाक्षर 400 शब्द

मानव कंकाल : के अध्ययन के बाद कुछ विद्वानो ने सैंधव सभ्यता को विदेशी कहा है। लेकिन मानव कंकालों के अध्ययन के बाद यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि वे विदेशी थे या स्वदेशी।

स्वदेशी मत : डब्लू0ए0 फेयर सर्विस, आस्चिन दम्पत्ति, अमलानन्द कोष, एस0आर0 राव आदि पुराविद इस संस्कृति को स्वदेशी मानते हुए इसी भू–भाग में रखे विकसित मानते हैं।

जहां विदेशी मत वाक्तो विद्ववानों की मान्यता थी कि यह संस्कृति आकस्मिक रूप से विकसित हुई वही स्वदेशी मत के पोषक।

पुराविद् – इसे ग्राम सभ्यता से शहरी सभ्यता में विकसित मानते हैं। अनेक उत्खन्नों के परिणामस्वरूप ग्राम सभ्यता के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। ऐसे स्थलों में मुन्डीपाक, सहरेसोख्ता, आमरी, हडप्पा, कालीबंगा आदि से प्राकृहडप्पीय संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। कालीबंगा से तो ग्राम व शहरी दोनों संस्कृतियों के अवशेष मिले है।

अमलानन्द घोष : शोर्था संस्कृति एवं कालीबंगा संस्कृति में सम्बन्ध में दर्शाते हुए एक ही स्थल पर विकसित मानते हुए एवं चटाई छाप युक्त मृदभाण्डो जो कि शोधी संस्कृति की विशेषता है ये पात्र हड़प्पा एवं कालीबंगा से भी प्राप्त हुए हैं।

अनेक पुरा सामग्रियां जो प्राक हडप्पीय काल में प्रचलित थी वे विकसित रूप में हड़प्पीय काल में प्राप्त होती हैं।

एस0आर0 राव के मतानुसार : गुजरात के हड़प्पीय सभ्यता के प्रसार के पूर्व कई सांस्कृतिक समूह विद्यमान थे। जैसा कि माकेसियस 'चमकीले लाल पात्र' एवं कृष्णलोहित मृभांण्ड की प्राप्ति से विदित होता है कि ये पात्र परम्पराएं लोथल के सबसे निचले स्तरों से प्राप्त होती है। अतः प्राकृहडप्पीय एवं हड़प्पीय संस्कृति में अंतराल नहीं दिखाई देता।

इसके अतिरिक्त आर0 चन्द्रा द्वारा प्राक हड़प्पीय एवं हड़प्पीय पुरा स्थलों का अध्ययन करने बाद जो दृश्य सामने आता है। उससे यह ज्ञात होता है कि ये संस्कृतियां पहले अविकसित थी और कालान्तर में इसमें धीरे–2 विकास होता है। जैसे–सिन्धु घाटी की उपत्ति कामो में ब्लूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र में आमरी संस्कृति 3000 बी0सी0 उदय हुई। इसमें ब्लूचिस्तान के ग्राम्य संस्कृतियों के विभिन्न पहलुओं के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार कालीबंगा, कोटपीजी व बनवाली में प्राकृ हडप्पा व हडप्पा संस्कृति के अवशेष हैं। इन विद्वानों का मत है कि धीरे–2 ग्रामीण जन समुदाय ने नगरीय जीवन की सभी आवश्यकताएं एकत्रित कर रखी होगी जिनके फलस्वरूप इनका प्रवेश एकाएक शहरी या नगरी सभ्यता के रूप में हुआ।

आर0डी0 बनर्जी आदि विद्वान हड़प्पा संस्कृति को स्वदेशी मानते हुए द्रविडो को सैंधव का जनक मानते हैं। वै सैंधव सभ्यता के पात्र प्रकार, मनके व दक्षिण भारतीय पात्रों पर चित्रण एवं सैंधव लिपि में समानता के आधार पर भारतीय मूल निवासी द्रविडो द्वारा सैंधव सभ्यता की उत्पत्ति मानते हैं।

कुछ विद्वान वैदिक कार्यों को इस सभ्यता का जनक मानते हैं। तर्क संगत हैं।

हड़प्पा सभ्यता का विघटन

इस विषय पर अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के गत प्रतिपादित किये हैं। सम्भवतः इसके विघटन में विभिन्न विपदाओं का योगदान रहा होगा जिसके यह समाहित की ओर अग्रसर हुई।

बाहंय आक्रमण : इस मत का समर्थन गार्डन चाईल्ड, मैके, स्टुअर्ट गिट, डी0एच0 गार्डन आदि करते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार आर्यों का आगमन भारत में 1200 बी0सी0 के आस–पास हुआ उन्होने हड़प्पीय संस्कृति को नष्ट किया एवं अपनी प्रभुसत्ता स्थापित किया। पिगट के अनुसार उत्तर पश्चिम की ओर से शहरी सभ्यता के विरूद्ध दुर्दान्त आर्यों द्वारा होने वाले आक्रमण एवं आग के परिणामस्वरूप इस संस्कृति का अन्त हुआ। जैसा कि रानाघुन्डई, नाल, ओव आदि

पुरास्थलों पर बस्तियों के जलने, नये जन साधारण के आने एवं नवीन प्रकार के उपकरणों के प्रयोग से विदित होता है।

मोहनजोदडो की सतह से गई शव प्राप्त होते है जिनमें कुछ बच्चे भी है। शवाधानों का अलग क्षेत्र होते हुए भी वे शव अस्त व्यस्त अवस्था में बिना दफनाये हुए प्राप्त हुए हैं। इनमें से कुछ परतो पर धारदार हथियार द्वारा काटने के भी उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यही नहीं मोहनजोदडो की अन्तिम अवस्था में असुरक्षा व अशान्ति के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। यहां की उपरी सतहों पर नयी किस्म की कुल्हाडियों, छूरे, पसलीदार एवं सपाट चूल वाली छूरियां मिली हैं।

पंजाब एवं हरियाणा के कई स्थलों पर लगभग 1200 बी0सी0 के उत्तर कालीन हड़प्पा मृदभाण्डों के साथ–2 धूसर, मृदभाण्ड और लाल भूरी पॉलिश वाले मृदभाण्ड पाये गये हैं जो आमतौर से वैदिक जनों से जुडे हैं।

आर्य अनार्य संघर्ष

आलोचना : ऋग्वेद में आर्यों के प्रिय देवता इन्द्र को पुरन्दर अर्थात किलों को तोडने वाला कहा गया है। फिर भी आर्य इतनी संख्या में नहीं आये कि सम्पूर्ण सभ्यता का विनाश कर सके। एस0आर0 राव आदि इस मत को नहीं मानते हैं।

2. प्रशासनिक शिथिलता : जान मार्शल आदि अनेक विद्वानों ने हडप्पा संस्कृति की अवनति के विषय में आतंरिक अव्यवस्था वं प्रशासनिक शिथिलता को कारण माना हैं। सम्भवतः प्रशासन में अव्यवस्था के कारण ही अन्तिम चरणों में हडप्पीय निवासियों के रहन सहन के स्तर में अवनति दिखती है। नवीन मकान की दीवारों में पुरानी ईटों का उपयोग एवं चौडी सड़को पर निवासियों का अतिक्रमण आदि से प्रशासनिक शिथिलता परिलक्षित होती है।

3. बाढ़ : जॉन मार्शल एवं ए मैके आदि ने सैंधव सभ्यता के विनाश का कारण सिन्धु नदीं की बाढ़ को माना है। जॉन मार्शल महोदय को उत्खन्न के समय बालू का जमाव प्राप्त हुआ था जो कि बाढ़ के फलस्वरूप ही जमा हुआ था। सम्भवतः बाढ़ के भय से ही मकान उंचे चबूतरों पर बनाया जाता था।

चान्हूदडो में भी बाढ़ के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। ए0के0 मैके के अनुसार सिन्धु नदीं में बाढ़ तक रही। चान्हुदड़ो के जन सामान्य पर कई बार अधिक समय तक रही। चान्हुदड़ो के जन सामान्य बाढ़ से बचने के लिये उंचे क्षेत्रों की ओर चले गये एवं उनकी विशिष्टयां समाप्त हो गयी। गुजरात के पुरा स्थल से भी बाढ़ के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

एस0आर0 राव के लोथल, भगवतराव, दौलतपुर, रंगपुर क्षेत्र से 2000 बी0सी0 से 1900 बी0सी0 में दो बार आई बाढ़ के अवशेष मिले हैं। आपके अनुसार सम्भवतः इसी काल में मोहनजोदडो एवं हड़प्पा में भी बाढ़ के प्रकोप प्रकट हुए जिसके कारण खेती नष्ट हो गयी। नहर बालू से भर गयी और इसके प्रकोपों के फलस्वरूप लोथल, हडप्पा व मोहनजोदडो आदि के निवासियों ने सतलज की घाटी, रोपड़ एवं सरस्वती घाटी में कालीबंगा आदि स्थलों को अपना निवास स्थल बनाया।

4. जलवायू परिवर्तन :– कुछ विद्वानों के अनुसार सिन्धु क्षेत्र में आज की अपेक्षा अधिक वर्षा होती थी। सारा क्षेत्र घने जंगलो से परिपूर्ण था लेकिन धीरे–2 जंगल कटते गये। वर्षा कम होती गयी, उपजाउ मिट्टी का कटाव हुआ जिससे कृषि पर व्यापक प्रभाव पडा। नदियां सूख गयी जिससे व्यापार ठप हो गया।

5. भू–तात्विक परिवर्तन : डा0 आर0एल0 टाईन्स ने प्राकृतिक उथल–पुथल को सिन्धु सभ्यता के पतन का कारण माना है। आपके मतानुसार अरब सागर के उत्तरी छोर पर प्राकृतिक उथल पुथल के कारण भूमि का स्तर उंचा हुआ जिससे की उस क्षेत्र में मिलने वाली नदियों के मार्ग में अवरोध

हुआ एवं रेत जमा हो गयी। फलस्वरूप स्थान–2 परी झीलें बन गयी जिसके परिणामस्वरूप यातायात तथा व्यापार ठप हो गया। कृषि की अवनति हुई अतः सिन्धु घाटी का विघटन हुआ।
6. विदेशी व्यापार में गतिरोध : उपरोक्त समवेत कारणों से इस सम्भ्यता का विघटन हुआ न कि किसी एक कारण से।

सैन्धव सभ्यता की देन अथवा सातत्व व उत्तरजीविता

सिन्धु सभ्यता की खोज होने से पूर्व अधिकांश विद्वानों की धारणा थी कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अभ्युन्नत तथ्य मुख्यतः आर्य भाषा भाषियों की देन हैं। लेकिन 1921 ई0 में सिन्धु सभ्यता के प्रकाश में आने के बाद अब यह सर्व सम्मति से स्वीकार किया जाता है कि भारतीय धर्म एवं संस्कृति के विनाश में आर्येत्तर तत्वों का उतना ही महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है जितना कि आर्य परम्परा का। परवर्ती भारतीय सभ्यता के अधिकांश तत्वों का मूल हमें भारत की इस प्राचीनतम सभ्यता में दिखाई देता है। इसने हमारे इतिहास को एक सा तत्व प्रदान किया है तथा इसकी प्राचीनता को 3000–2500 ईसा पूर्व तक पहुंचा दिया है। सिन्धु सभ्यता की उत्तर जीविका तथा सातत्व का प्रभाव भारतीय सम्भ्यता के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा कलात्मक पक्षों में दृष्टिगत होता है।
1. सामाजिक : सामाजिक जीवन के क्षेत्र में सर्वप्रथम वर्ग व्यवस्था का बीज सैन्धव सभ्यता में प्राप्त होता है। मोहन जोदडो की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर विद्वानों ने सैन्धव समाज को चार वर्गों में बाटा है। विद्वान, योद्धा, व्यापारी, शिल्पकार व श्रमिक। इन्हें हम ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्गो का पूरक कर सकते हैं।
2. आर्थिक : आर्थिक जीवन के क्षेत्र में हम पाते है। कि कृषि, पशुपालन, उद्योग धन्धों, व्यापार वाणिज्य आदि का संगठित रूप से प्रारम्भ सैन्धव वासियो ने किया जिनका विकास बाद की सभ्यताओं में हुआ। गेहूं, जौ, चावल, कपास आदि सैन्धव सभ्यता के प्रमुख धान्य थे जिनका उत्पादन आज तक होता है। इसी प्रकार प्रमुख पशु आज भी पाले जाते हैं।

सिन्धु निवासियों ने बाहय जगत से सम्पर्क स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया जो बाद की सदियो तक विकसित होता रहा।

भारतीय आहत मुद्राओ पर अंकित कुछ प्रतीक चिन्ह, सैन्धव लिपि के चिन्हों जैसे है। दूसरे सांचे में ढालकर तैयार की गयी मुद्रा अपने आकार प्रकार के लिए सैन्धव मुद्राओं नकल है।

हड़प्पा व मोहनजोदडो के बर्तनो, मिट्टी की वस्तुओं आदि पर अंकित कुछ चिन्ह, आकृतियां, प्रतीक आदि पंजाब से ईसा पूर्व की प्रारम्भिक सदियो की वस्तुओं पर अंकित मिलता है।
धर्म : सैन्धव सभ्यता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव हिन्दु धर्म तथा धार्मिक विश्वासो पर दिखाई देता है। मार्शन ने उचित ही सुझाया है कि हिन्दु धर्म के प्रमुख तत्वों का आदि रूप हमें सैन्धव धर्म में प्राप्त हो जाता है।
1. सैन्धव धर्म में मातृदेवी का प्रमुख स्थान था। इसी का विकसित रूप बाद में शाक्त धर्म में दिखाई देता है। सिन्धु घाटी के लोगो ने अपने पीछे मातृ पूजनकी जो परम्परा छोडी उसे भारतीय लोगो ने शक्ति देवी ग्राम देवता आदि के रूप में स्वीकार किया। वह आज तक सर्वोपरि देवी के रूप में विद्यमान है।
2. सैन्धव धर्म में जिस पुरूष देवता का उल्लेख मिलता है उसे ऐतिहासिक काल के पशुपति, शिव का रूप कहा जाा सकता है। यहीं से लिंग पूजा का उल्लेख मिलता है जो आज भी प्रचलित है। पद्रमासन की योग मुद्रा में बैठे हुए योगी की मूर्ति से बाढ़ में महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया गया।

कुछ प्राप्त मूर्तियों के पैरो के बीच थोड़ा अंतर है तथा भुजाएं शरीर के दोनों ओर समानान्तर है। इस मूर्ति का विकास बाद में जैनियो की कार्योत्सर्ग मुद्रा की मूर्तियों मे देखने का मिलता है।

इस प्रकार शैव धर्म की तरह बौद्ध तथा जैन धर्मों का आदि रूप भी हमें सैन्धव सभ्यता में मिल जाता है।

3. सैन्धव सभ्यता में पीपल को पवित्र वृक्ष माना गया है। कालान्तर में हिन्दू तथा बौद्ध दोनो धर्मों में पीपल को पवित्र वृक्ष मानकर उसकी पूजा की जाने लगी। इसी वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध मानकर उसकी पूजा की जाने लगी। इसी वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को सम्बोधित प्राप्त हुई थी। गीता में भगवान कृष्ण ने अपने को वृक्षों में अश्वस्थ बताया है। पुराणों में वर्णित है कि जो लोग अश्वस्थ पर जल चढ़ाते हैं स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

4. सिन्धु सभ्यता मे विभिन्न पशुओं की पूजा की जाती थी। आज भी पशु पूजा प्रचलित है तथा विभिन्न पशुओं को देवताओं का वाहन माना जाता है। जैसे शिव नन्दी, गणेश–हाथी आदि। नाग पूजन भी हिन्दु धर्म में नागपंचमी के दिन की जाती है।

5. सैन्धव सभ्यता के समान आज भी जल को पवित्र माना जाता है तथा उसे विभिन्न देवताओं पर चढ़ाया जाता है।

6. सैन्धव निवासी स्वास्तिक, चक्र, स्तम्भ आदि को पवित्र मानकर उसकी पूजा करते थे हिन्दु धर्म में आज भी स्वास्तिक को पवित्र मांगलिक माना जाता है।

7. सैन्धव निवासियों की तरह मूर्ति पूजा आज भी प्रचलित है।

4. कला : धर्म के समान ही भारतीय कला के विभिन्न तत्वों का मूल रूप भी हमें सैंधव कला में दिखाई देता है। शायद भारतीयों को दुर्ग निर्माण तथा प्राचीरों के निर्माण की प्ररेणा यहीं से मिली है। सुनियोजित ढंग से नगर बसाने का ज्ञान भी हमें हड़प्पा संस्कृति से ही प्राप्त होता है।

मौर्य कलाकारों ने स्तम्भ युक्त भवन बनाने की प्ररेणा सम्भवतः सैन्धव सभ्यता से ही किया था। ऋग्वेद से पता चलता है कि आर्यो के घर/दुर्ग शत् भूजी अर्थात 100 खम्भों वाले थे जिनका इन्द्र ने भेदन किया था। यह सैन्धव दुर्गों का स्पष्ट संकेत है। लगता है कि इन्हीं के अनुकरण पर मौर्य कलाकारों ने चन्द्रगुप्त के खम्भों वाले राज्य का निर्माण किया था।

मूर्ति कला का प्रारम्भ सर्व प्रथम सिन्धु घाटी में ही किया गया। वहां के कलाकारों ने पाषाण, ताम्र, कांसा आदि की जिन कलात्मक मूर्तियों का निर्माण किया उनका व्यापक प्रभाव में बाद की हिन्दु कला पर पडा।

सिन्धु सभ्यता में नर्तकी की जो मूर्ति है। उसी के अनुकरण पर मथुरा की पाषाण पर पक्षी मूर्तियों का निर्माण हुआ प्रतीत होता है।

5. नगरीयकरण : सैन्धव सभ्यता की एक प्रमुख देन नगर जीवन के क्षेत्र में है। पूर्ण विकसित नगरीय जीवन का सूत्रपात इसी सभ्यता से हुआ। सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता इत्यादि के क्षेत्र में सैन्धव लोगो ने बाद की पीढियों का दिशा निर्देश किया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक आर्यों ने सैन्धव नगरों का विनाश कर उन्हें गर्त में मिला दिाय। किन्तु वे स्वंय उसकी समुन्नति संस्कृति के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। इस प्रकार आर्य तथा आर्येसर तत्वों के मिश्रण से ही भारतीय सभ्यता का सम्यक विकास हुआ।

सिन्धु सभ्यता की आधारभूत विशेषताएं

सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से प्राप्त मृग व प्रस्तर मूर्तियों, मुहरो, मुद्राओं कतिपय प्रकार के मृदभाण्डो तथा नगर अवशेषों के आधार पर सिन्धु सभ्यता की कतिपय आधार भूत विशेषताएं परिलक्षित होती हैं।

1. सिन्धु सभ्यता तृतीय कांस्य कला की सभ्यता है। इसमें कांस्यकाल की सर्वोत्कृष्ट विशेषताएं परिलक्षित होती हैं। हालांकि यह कांस्य कालीन सभ्यता अवश्य है फिर भी उसमें सबसे ज्यादा प्रयोग पत्थरों का ही किया गया है।
2. सिन्धु सभ्यता नगरीय तथा व्यापार प्रधान थी। इसके अन्तर्गत सिन्धु निवासियों ने भौतिक जीवन के क्षेत्र में आश्चर्य जनक उन्नति किया था। उन्हें नगरीय जीवन की अगणित सुविधाएं प्राप्त थी। विशाल नगरों, पक्के भवनों, सुव्यस्थित सड़कों, नालियों और स्नानागारों के निर्माता, सुदृढ़ शासन पद्धति व नगर पालिका जैसा निकाय, विदेशी व्यापार के संगठन कर्ता, सिन्धु निवासियों की चतुर्दिक अभ्युान्नति के पीछे साधना व अश्रुभव की एक सुदीर्घ परम्परा थी।

प्राप्त मुहरों तथा मुद्राओं व अभिलेखों से ज्ञात होता है इनका विदेशों से व्यापक, पैमाने पर सम्पर्क था। मेसोपोटामिया, क्रीट तथा सुमेरिया सभ्यता के लोगो के साथ इसका व्यापार होता था।

3. सिन्धु सभ्यता शान्तिमूलक थी। उसके संस्थापको को युद्ध से अनुराग न था। यही कारण है कि सिन्धु प्रदेश के उत्खन्न में कचव, शिरसाव और ढाल नहीं मिले हैं, जो अन्य अश्त शस्त्र, धनुष बाण, भाला, कुल्हाडी आदि उपलब्ध हुई हैं। उनका प्रयोग बहुधा आत्म रक्षा अथवा आखेट के लिये ही किया जाता था।
4. यह सभ्यता समठिट वादिनी थी। सिन्धु प्रदेश के उत्खन्न में राज सामाग्री के स्थान पर सार्वजनिक सामग्री ही मिली है। विशाल सभा भवन और स्नानागारों के ध्वंसावशेष सिन्धु प्रदेश के सामूहिक जीवन के परिचायक है।
5. सिन्धु प्रदेश का आर्थिक जीवन औद्योगिक विशेषीकरण और स्थानीकरण पर अवलम्बित था। इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिकांश व्यवसायी प्रायः एक ही व्यवसाय का अनुसरण करते थे। समान व्यवसाय के अनुसरण कर्ता प्रायः एक ही मुहल्ले में रहते थे।
6. सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत धर्म द्विदेवतामूलक, सिन्धु निवासी की श्रद्धा भक्ति के प्रमुख केन्द्र थे। दो देवता एक पुरूष के रूप में दूसरा नारीं के रूप मे। पुरूष व नारी चिरन्तन द्वन्द का यह मधुर दैवीकरण सिन्धु निवासी निशित कल्पना का प्रमाण हैं।
7. सिन्धु सभ्यता में लेख, गणना और माप भी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। उन्होनें उसकी प्रगति को सत्वरता प्रदान की होगी।

सिन्धु सभ्यता व वैदिक सभ्यता में अंतर

मार्शल एवं अन्य कुछ विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता के मध्य निम्नलिखित अंतर को स्पष्ट किया है :–

1. वैदिक संस्कृति ग्रामीण प्रधान थी जबकि सिन्धु सभ्यता नगरीय थी।
2. सिन्धु सभ्यता व्यापार प्रधान थी जबकि वैदिक सभ्यता कृषि प्रधान थी।

3. सिन्धु सभ्यता का सम्बन्ध विदेशों से जैसे मिस्र, क्रीट, मसोपोटामिया आदि की सभ्यता से था। जबकि आर्य सभ्यता का सम्पर्क विदेशों से नहीं था।
4. सिन्धु सभ्यता के लोग सोने चांदी, तांबे के अतिरिक्त लोहे से परिचित नहीं थे जबकि आर्य जन लोहे से परिचित थे।
5. आर्यों के जीवन में अश्व का काफी महत्व था जबकि सैन्धव इससे अपरिचित लगते हैं।
6. सिन्धु सभ्यता की नगर योजना तथा गृह निर्माण सुनियोजित था जबकि आर्यों के समय ऐसा कुछ भी नहीं था।
7. सिन्धु लोग कूबडदार बैल को ज्यादा महत्व प्रदान करते थे। जबकि आर्य गायों का विशेष महत्व देते थे।
8. सैन्धव सभ्यता के लोग शान्तिप्रिय थे। जबकि आर्य युद्ध प्रिय थे।
9. सिन्धु सभ्यता के स्थलों से नारी मूर्तियां प्रभूत संख्या में मिली है। जिससे अनुमान गाया जाता है कि सिन्धु सभ्यता के देवताओं में देवी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। जबकि आर्यों में पुरूष देवता अधिक महत्वपूर्ण रहे।
10. सिन्धु सभ्यता में लिंग पूजा का विशेष महत्व रहा जबकि आर्यों ने इसे अनार्यों की पूजा कहकर निन्दा की है। आर्यों ने लिंग पूजा को शिश्न देवाः कहकर निन्दा किया है।
11. सिन्धु सभ्यता में यशों तथा स्तुतियों को कोई महत्व नहीं था जबकि आर्यों के जीवन में राशों तथा स्तुतियों का महत्वपूर्ण स्थान था।
12. ऋग्वैदिक काल में न शिव पूजा का प्रचलन था और न ही मातृ देवी की पूजा का परन्तु इन दोनों की ही पूजा सिन्धु प्रदेशों में अति लोकप्रिय थी।
13. वैदिक जीवन में अग्नि का विशेष महत्व था। धार्मिक क्रियाओं के लिये प्रत्येक आर्य के घर में अग्निकुण्ड का होना आवश्यक समझा जाता था। परन्तु सिन्धु निवासियों के धार्मिक जीवन में अग्नि का कोई विशेष महत्व नहीं था।
14. ऋग्वेद में व्याघ्र का उल्लेख नहीं मिलता और हाथी का बहुत कम। जबकि अनेकानेक उपलब्ध मूर्तियों से स्पष्ट हेता है कि सिन्धु निवासी इन दोनों पशुओं से भली भांति परिचित थे।
15. मांसाहारी होते हुए भी आर्य मछली के प्रेमी न थे। परन्तु सिन्धु निवासियों की मछली एक प्रिय भोजन थी।

सिन्धु सभ्यता में धर्म तथा धार्मिक विश्वास

सिन्धु सभ्यता की 1921 में खोज होने से पूर्व तक अधिकांश विद्वानो की यह मान्यता थी कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को अभ्युन्नत तत्व मूलतः आर्य भाषा भाषियों की देन थे। सिन्धु सभ्यता के प्रकाश में आने के बाद अब यह प्रायः स्वीकार किया जाता है कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के विकास में आर्येत्तर तत्वों का उतना ही महत्वपूर्ण योगदान विकास माना जा सकता है। जितना कि आर्य परम्परा का। धर्म सैंधव सभ्यता का एक अत्यन्त विशिष्ट पक्ष था। जिसके उनके तत्व परवर्ती भारतीय सभ्यता में अंगीकृत हुए।

सैन्धव लिपि के पढ़े न जा सकने के कारण सैन्धव धर्म के विषय में लिखित साक्षयों का पूर्ण अभाव है। केवल पुरातात्विक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सैन्धव धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है। हमें सैन्धव सभ्यता के विभिन्न पुरा स्थलों से प्राप्त होने वाली मिट्टी की मूर्तियों, पत्थर की मूर्तियों, मुहरों व मुद्राओं तथा मृदभाण्डो पर बनी आकृतियों और कतिपय विशिष्ट प्रकार के भवनों एवं स्मारकों के अध्ययन के आधार पर सैन्धव धर्म की जानकारी मिलती है। सैन्धव धार्मिक पक्ष में मातृदेवी की उपासना, पशुपत के रूप में देव उपासना, वृक्षपूजा, जल व वृक्ष पूजा लिंग व योनी पूजा आदि की प्रमुखता ज्ञात होती है।

2. मातृशक्ति या मातादेवी की पूजा : सरजॉन मार्शल के अनुसार माता देवी के सम्प्रदाय का सैन्धव संस्कृति में प्रमुख स्थान था। यहां पर पुरास्थलों से मातृ शक्ति की पूजा के विषय में जो साक्षय मिले हैं उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मृण्मूर्तियां 2. मुहरों पर अंकित नारी

सिन्धु सभ्यता के सिन्ध तथा पंजाब के क्षेत्रों में अनेक मृण्मूर्तियां मिली हैं जिसे देवी कहा गया है। वह देवी करधनी, छार, कर्णफूल, कण्ठहार आदि पहने हुए हैं। कतिपय मूर्तियों को गोद में शिशु लिये हुए प्रदर्शित किया गया है।

1. मैके को कुछ ऐसी मृण्मूर्तियां मिली हैं। धूएं के चिन्ह दिखाई देते है। इन्होनें सम्भावना व्यक्त किया है कि देवी को प्रसन्न करने के लिए उसके सामने धूप आदि सृगन्धित द्रव्य जलाए जाते थे।

हड़प्पा से प्राप्त बेलनाकार एवं लेखयुक्त एक मुहर में एक तरफ सिर के बल खड़ी स्त्री का एक चित्र है। जिसकी योनी से एक पौधा निकला रहा है। मुहर के दूसरी तरफ एक और शस्त्र लिये एक पुरूष खड़ा है। मार्शन ने सम्भावना व्यक्त किया है कि यह मानव बलि का दृश्य है। हो सकता है कि देवी का प्रसन्न करने के लिये मनुष्यों के बलि का विधान रहा हो।

एक अन्य मुद्रा में पोपक की दो शाखाओ के बीच एक स्त्री का चित्र है। पेड के नीचे एक पुरूष एक बकरा लिये खड़ा है। इससे दो बाते ज्ञात होती है प्रथम बकरे की बलि मातृदेवी की उपासना से सम्बन्धित थी। द्वितीय पीपल के पेड़ की उपासना मातृदेवी की उपासना से सम्बद्ध रही हो।

2. पुरूष देवता या पशुपति की उपासना : अनेस्टि मैके को मोहनजोदडो से एक मुहर प्राप्त हुई है। इस मुहर पर एक पुरूष सिंहासन पर पद्मासन की योग मुद्रा में बैठा है। उसके सिर पर तीन सींगो की तरह एक आभूषण है उसके चारों और एक हाथी, एक गैंडा, एक बाघ और एक भैंसा है तथा पैरो के नीचे दो हीरण चित्रित हैं।

मार्शन ने इस देवता को रूद्र शिव से सम्बन्धित किया है जिसे त्रिमुख पशुपति, योगेश्वर अथवा महायोगी कहा गया है।

3. योनि तथा लिंग पूजा : हड़प्पा, मोहनजोदडो तथा लोथल आदि सैन्धव पुरा स्थलों से चमकीले पत्थरों पर निर्मित कतिपय ऐसे पुरावशेष प्राप्त हुए हैं जिनका समीकरण लिंग से किया गया है। खुदाई में सूच्चाकार तथा वर्तुलाकार लिंग मिे हैं। अनके छल्ले भी मिले हैं जिनसे योनी पूजा की सूचना मिलती है।

4. पशु पक्षी व वृक्ष पूजा : सैन्धव निवासी विविध प्रकार के पशुओं, पक्षियों, वृक्षों आदि की भी उपासना करते थे। पशुओं में गैंडा, बैल, चीता, हाथी, भैंसा तथा कूबडदार बैल मुख्य है। इनमें कूबडवाला सांड सर्वाधिक महत्व का था।

जॉन मार्शल ने कालान्तर में विकसित होने वाली गणेश पूजा एवं वराहअवतार आदि को पशु पूजा का ही विकसित रूप माना है। सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित मुहरों एवं मृदभाण्डो इत्यादि पर पोपल, बबूल, नीम, खजूर, ताड़ महत्व का माना जाता था। जिसकी पूजा आज भी की जाती है। विद्वानों की धारणा है कि पीपल के वृक्ष में सैन्धव सभ्यता का मुख्य देवता निवास करता था। सिन्धु सभ्यता में फाख्ता को एक पवित्र पक्षी माना जाता था।

5. मूर्ति पूजा : सैन्धव नगरों की खुदाई में अभी तक किसी मन्दिर, समाधि तथा बेदी आदि के अवशेष नहीं मिले हैं। इस आधार पर कुछ विद्वानों का ऐसा सुझाव है कि देवी देवताओं की पूजा खुले स्थानों पर की जाती थी। धूप दीप, पुष्प, पशुबलि और सम्भवतः यदाकदा मानवा बलि द्वारा पूजा की जाती थी।

6. जल पूजा : मोहनजोदडो के उत्खन से एक विशाल स्नानकुण्ड मिला है। स्नानागार के उत्तर में दो पंक्तियों में छोटे–2 आठ स्नान कक्ष भी मिले हैं। जहां पर लोग पूजा करने के पहले स्थान

करके अपने कपड़े बदलते रहे होगें। इस आधार पर जान मार्शल ने विचार व्यक्त किया है कि सैन्धव सभ्यता के लोग जल पूजा और सम्भवतः सरित पूजा किया करते थे।

7. सैन्धव स्वास्तिक व चक्र को भी पवित्र मानते थे। इसके अतिरिक्त नागपूजा का भी संकेत मिलता है। एक चित्रित मिट्टी के बर्तन पर किसी बैठे हुए देवता का चित्र बना हुआ है जिसके एक तरफ पुजारी तथा सिर के उपर नाग का चित्र है।

अनेक ताबीजे भी प्राप्त होती है सम्भवतः प्रत्येक सैन्धव नागरिक मृदा को ताबीज के रूप में धारण करता था। ताबीजो पर तहर–तहर के चित्र खुदे हुए हैं। जिनका महत्व धार्मिक रहा होगा।

8. अत्येंष्टि संस्कार : सिन्धु सभ्यता की परलोक विषयक मान्यताओं के विषय में लिपि के अभाव में निश्चित जानकारी नहीं हैं। किन्तु इतना स्पष्ट है कि मृतक के अन्तिम संस्कार के प्रति वे पूर्ण सजग थे जिससे उनकी परलोक विषयक धारणा का भाव अवश्य होता है।

सिन्धु सभ्यता में अन्त्येष्टि संस्कार की तीन विधियां प्रचलित थी :–

1. पूर्ण समाधिकरण 2. आंशिक समाधिकरण 3. दाह संस्कार

कंकालो के साथ मिट्टी के बर्तन, आभूषण, उपकरण, दीप तथा दर्पण आदि अंत्येष्टि सामग्रीयां रखी हुई मिली हैं। उससे उनकी स्वर्ग विषयक धारण पुष्ट होती है।

वैदिक कालीन समाज

1. परिवार : ऋग्वेदिक कालीन समाज प्रारम्भ में वर्ग विभेद से रहित था। सभी व्यक्ति जन के सदस्य समझे जाते थे तथा सबकी समान सामाजिक प्रतिष्ठा थी। कोई भी विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग नहीं था। ऋग्वैदिक समाज का आधार परिवार था। परिवार संयुक्त तथा पितृ सत्तात्मक होता था। परिवार के मुखिया तथा पिता को असीमित अधिकार प्राप्त था। दिवालिया जुआरी के दृष्टान्तो से स्पष्ट होता है कि परिवार में मुखियां पुरूष का पूर्ण नियंत्रण था। ऋजाटव के दृष्टान्त से ज्ञात होता है कि उसके पिता ने उसे अन्धा बना डाला था। वरूण सुक्त के शेष के आख्यान से ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि पिता अपनी संतान को बेच सकता था। संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी। विवाह सूक्त से ज्ञात होता है कि नव विवाहिता वधु अपने पति के घर में सास, ससुर, देवर, ननद के उपर अधिकार रखने वाली साम्राज्ञी बन जाती थी। इससे एक ही परिवार में कई सम्बन्धियों के रहने की सूचना मिलती है।

2. वर्ण व्यवस्था : पूर्व वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया था। ऋग्वेद में वर्ण शब्द रंग के अर्थ में तथा कहीं–2 पर व्यवसाय चयन के अर्थ मं प्रयुक्त हुआ है। आर्यों को गौर वर्ण तथा अनार्यों को कृष्ण वर्ण कहा गया है।

आर्य जन जब तक भारत में प्रवेश किये तो वे सर्व प्रथम मुख्यतः तीन सामाजिक वर्गों में विभाजित थे। योद्धा अथवा कुलीन वर्गों में विभाजिक थे। योद्धा अथवा कुलीन वर्ग, पुरोहित एवं सर्वसाधारण वर्ग भातर में प्रवेश के बाद आर्यों को अनार्यों से संघर्ष करना पड़ा। इस प्रकार संघर्ष में भाग लेने वाले को क्षत्र कहा गया। क्षत्र का अर्थ हानि से रक्षा करने वाला होता है। 2. इसी प्रकार से यज्ञो को कराने के लिए जो व्यक्ति चुने गये उन्हे ब्रहम कहा गया। शेष जनता को विश कहा गया। परन्तु इन तीनों वर्गों में कोई कठोरता नहीं थी। एक ही परिवार के लोग ब्रहम, क्षत्र, विश हो सकते थे। ऋग्वेद के एक स्थान पर एक ऋषि कहता है –

मैं कवि हूॅ, मेरा पिता वैद्य है तथा मेरी माता अनाज पीसने वाली है। साधन भिन्न है परन्तु सभी धन की कामना करते हैं।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि समाज का तीन वर्गों में विभाजन मात्र व्यवहारिक व आर्थिक संगठन की सुविधा के लिये किया गया था। अतः वर्ण व्यवस्था जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित थी। व्यवसाय परिवर्तन सम्भव था।

ऋग्वेद के 10वें मण्डल के पुरूषसूक्त में सर्व प्रथम सूद्र शब्द का उल्लेख मिलता है। जो परवर्ती कालीन वर्ण व्यवस्था का चौथा वर्ग था। यह चारो वर्णों पर उत्पत्ति एक विराट पुरूष के विभिन्न अंगो से बतायी गई है। यह कहा गया है कि जब देवताओं ने विराट पुरूष की बलि दी तो उसके मुख से ब्राहमण, भुजाओं से राजन्य, उरूभाग से वैश्य तथा पैरों से सूद्र उत्पन्न हुए।

ब्राहमणोउस्थ मुखमासीद, बाहु राजन्य कृतः।
उरू तदस्य सद्वैश्यः पदश्याम शुद्रो अजायत।।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यो ने अनार्यों को दास–दस्यु को परास्त उन्हें सामाजिक परिधि से बहिष्कृत कर दिया औरर उन्हें अपने सामाजिक संगठन में सबसे निम्न और अन्तिम स्थान प्रदान किया जो कालान्तर में एक चौथा वर्ग सूद्र नाम से समाज में उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में ऐसा माना जाता था कि सुद्र वर्ण के अन्तर्गत केवल अनार्य वर्ण के लोग ह सम्मिलित थे। लेकिन आर0एस0 शर्मा ने इस वर्ण के तहत आर्य तथा अनार्य दोनो को माना है। उनका मत है कि ''आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं के फलस्वरूप दोनो ही वर्गो में श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। जो बाद में सभी वर्गों की सामान्य संज्ञा सूद्र हो गयी।

3. दास प्रथा : ऋग्वेदीय समाज की चर्चा में दास एवं दश्यु का उल्लेख भी अपेक्षित है। इनके साथ आर्यों के संघर्ष के पर्याप्त वर्णन है। पाश्चात्य विद्वानों ने इनके अनार्यों की श्रेणी में रखकर इन्हें इस भू भाग का आदिम निवासी माना है। किन्तु दास एवं दशुओं के अनार्य श्रेणी में रखना समस्या का अत्यन्त सरलीकरण होगा। हो सकता है ये आर्यों के विभिन्न दलों के प्रतिनिधि हो कुछ सांस्कृतिक व सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण दास करार कर दिये गये हों। उदारणार्थ युद्ध व तुर्वस जातियां निसन्देह आर्य पंचमानुषों में गिनी जाती थी। किन्तु इन्हें एक जगह दास कहा गया है। दिवोदास और सुदास नामों की ध्वनियां भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

दास तथा दश्युओं को अब्रहमन, अयज्वन, अनासः एवं मृध्रवाचः कहा गया है।

4. विवाह : परिवार में एक पत्नीत्व विवाह सामान्यतः प्रचलित यद्यपि कुलीन वर्ग के लोग कई पत्नियां रखते थे। बाल विवाह एवं विधव विवाह नहीं होते थे। विवाह में कन्याओं का पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान थी। कभी–2 वे अपने पतियों का चुनाव स्वंय करती थी। अन्तर्राजातीय विवाह होते थे। पुर्नविवाह एवं नियोग प्रथ प्रचलित थी। पुत्रों की बहुलता के लिये निरंतर कामना की जाती थी। एक मंत्र में कहा गया है कि है इन्द्रदेव इस स्त्री को दस पुत्र प्रदान करों ताकि इसका पति ग्यारहवां होवे।

समाज में सती प्रथा के प्रचलन का कोई उल्लेख नहीं मिलता। 10वे मण्डल के पुरूष सूक्त से पता चलता है कि इस प्रागैतिहासिक प्रथा की औपचारिकताएं को पूरा करने के लिये स्त्री पुरूष अपने मृत पति के साथ चिता पर लेटती थी फिर उसके सम्बन्धी उससे उठने के लिये आग्रह करते थे।

5. स्त्री दशा : समाज में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता प्राप्त थी। शतपथ ब्राहमण में पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है। वह पति के साथ यज्ञीय क्रियाओं मं भाग लेती थी। पत्नी से रहित व्यक्ति यज्ञ करने का अधिकारी नहीं था। ऋग्वेद में जायेदस्तम अर्थात पत्नी ही गुह है। कहा गया है कि समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। उनकी शिक्षा दीक्षा की समुचित व्यवस्था थी। ऋग्वेद में घोषा, लोपा, मुद्रा, विश्वतारा, आदि स्त्रियों के नाम आते हैं जो पर्याप्त शिक्षिता व विद्वषी थी। इसके बावजूद भी उनकों राजनीति में भाग लेने तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार नहीं था।

6. खानपान : आर्यों के मकान बडे और सुन्दर होते थे जिनमें परिवार व पशु साथ–साथ एक ही छत के नीचे रहते थे। पारिवारिक अग्निकुण्ड को विशेष प्रतिष्ठता प्राप्त थी और उसमें अग्नि निरंतर प्रज्वलित रखी जाती थी। आर्य मांसाहारी वव शाकाहारी दोनो प्रकार के भोजन ग्रहण करते थे। अतिथि को सम्मान में गायों का मांस खिलाया जाता था। नमक का उल्लेख नहीं मिलता। सोम व सुरा आर्यों के मुख्य पेय थे। सोमरस का पान वैधानिक था। एक स्थान पर दावा करते हैं कि – सोमरस पीने के बाद उन्होने अमरत्व प्राप्त कर लिया है तथा देवताओं को पारत कर लिया है।

7. वेषभूषा : आर्यों के वस्त्र सूत, उन तथा मृगचर्म से बनाये जाते थे। वस्त्र तीन प्रकार के होते थे। नीवी वासस, अधिवासस, इसके अतिरिक्त स्त्री व पुरूष आभूषण के प्रेमी थे।

रथ दौड, घुडदौड तथा पास फेकना तथा धुत क्रिडा उनके आमोद प्रमोद के साधन थे। संगीत मं आर्यो की रूचि का पता केवल प्राचीन साक्षियों में उल्लिखित विविध वाध यंत्रो ढोल, बांसुरी, बीन तथा बाद में विकसित मंजीरो से ही नहीं बल्कि सामवेद के गायन पद्धति में प्रयुंक्त स्वर, लय, ताल आदि अत्यन्त परिष्कृत ज्ञान से भी उनका बोध होता है। आर्य लोग सत स्वरोत के आरोह अवरोह से भी परिचित थे।

उत्तर वैदिक काल

इस समय भी परिवार संयुक्त तथा पितृ सत्तात्मक था एवं परिवार के मुख्याओं को विशेष अधिकार प्राप्त था। लेकिन अब समाज स्पष्टतः वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। वर्णों में क्रमशः कठोरता आने लगी थी और वे जाति के रूप में परिणित होने लगे थे। परन्तु इस समय भी जाति प्रथा उतनी कठोर नहीं थी जितनी की सूत्रों के काल में देखने को मिलती है।

धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में चारो वर्णों के कर्तव्यों, अधिकारों और स्थित में स्पष्ट विभेद किया जाने लगा था। ब्राहमण एवं क्षत्रीय अनुत्पादी होते हुए भी विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग थे। क्योंकि वे ही उत्पादन के नियंत्रण कर्ता थे। शतपथ ब्राहमण में चारों वर्णों की अंत्येष्टि के लिए चार प्रकार के तिलों का उल्लेख है। चारो वर्णों के लिये सम्बोधन ढंग भी अलग–2 थे। क्रमशः आईय, आगहि आओ, आद्रव जल्दी आओ, दौडकर आओ। इसी प्रकार अलग–2 रंग के यज्ञोपवीत का भी विधान था।

ऐतरेय ब्राहमण में चारो वर्गों के कर्तव्यों का वर्णन भी मिलता है। ऐसा लगता है कि इस समय ब्रहामणों व क्षत्रियों में सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गयी थी। शतपथ ब्राहमण एक स्थान पर क्षत्रीय को ब्राहमण की अपेक्षा श्रेष्ठ बताता है।

इस समय तक समाज में अश्पुरयता की भावना का उदय नहीं हुआ था। उपनिषदों में उल्लिखित सत्यकाम जावालि तथा जनाश्रुति की कथाओं से स्पष्ट है कि सूद्रो को दर्शन के अध्ययन से वंचित नहीं किया गया था।

स्त्रियों की दशा में ऋग्वेदिक काल की अपेक्षा अब कुछ गिरवाट आयी थी। मैत्राययी संहिता में उसे पासा तथा सुरा के साथ तीन प्रमुख बुराईयों में गिनाया गया है। इसी प्रकार ऐवरेय ब्राहमण में पुत्री को सभी दुःखो का स्रोत तथा पुत्र को परिवार का रक्षक माना गया है। अथर्ववेद भी कन्याओं के जन्म की निन्दा करता है।

ब्रहदारण्यक उपनिषद से ज्ञात है कि एक वाद विवाद के दौरान याज्ञबल्वय गार्गी को डांटता है कि ज्यादा बहस न करो नहीं तो तुम्हारा सिर तोड दिया जायेगा। यद्यपि यह कथन स्त्रियों की दशा में गिरावट के साथ–2 उनकी शिक्षा तथा योग्यता का भी संकेत देता है। राजनीति तथा सम्पत्ति का अधिकार अभी भी उन्हें प्राप्त नहीं था। स्त्रियों की शेष दशा पूर्व जैसी थी।

समाज का शेष जीवन जैसे खान–पान मनोरंजन तथा वस्त्राभूषण आदि ऋग्वेदिक काल के ही समान था। उत्तर वैदिक काल में गोल प्रथा स्थापित हुई। गोल शब्द का मूल अर्थ था गोष्ठ। वह स्थान जहां समूचे कुल का गोधन पाला जाता था। परन्तु बाद में इसका अर्थ एक ही मूल पुरूष से उत्पन्न लोगो का समुदाय हो गया।

ऋग्वैदिक में आश्रम व्यवस्था स्थापित नहीं हुई थी। उत्तर वैदिक काल में मात्र शुरू के तीन आश्रमों का ही उल्लेख मिलता हैं।

वैदिक कालीन अर्थव्यस्था

आर्यों की संस्कृति मूलतः ग्रामीण थी। पशुपालन तथा कृषि उनके आर्थिक जीवन के मूलभूत आधार थे। आर्य भारत में अर्धविचरणशील पशुचारियों के रूप में आये थे। उनका निर्वाह मुख्य पशु उत्पादनों से होता था और कुछ समय तक पशु पालन ही उनका मुख्य व्यवसाय रहा। पशु ही आर्यों की सम्पत्ति समझे जाते थे। कृषक पशुओं की वृद्धि के लिए कामना करते थे। सैनिक पशुओं को लूट के धन में पाने की आशा करते थे तथा पुरोहित पशुओं से ही पुरस्कृत किये जाते थे। पशुओं में गाय सबसे बहुमूल्य वस्तु मानी जाती थी। गाय ही मुख्यतः विनिमय का माध्यम होती थी। गाय की महत्ता इतनी थी कि गविठित अर्थात गायो की खोज करना का अर्थ युद्ध करना हो गया जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पशुओं के अपहरण और पशुओं की खोज के परिणाम स्वरूप बहुधा जनों में युद्ध छिड जाया करते थे। गाय के बाद अन्य पशुओं में घोडे को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। क्योंकि आवागमन तथा युद्ध के लिये घोड़ा अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त आर्य भेड, बकरी, ब्याघ, उंट, बैल, गधा, कुत्ता आदि सभी से परिचित थे। सम्भवतः हाथी से वे परिचित नहीं थे। इस संदर्भ में डा0 आर0एस0 शर्मा का मत समीचीन लगता है कि ऋग्वेदिक आर्य मुख्यतः पशुचारी थे तथा कृषि का उनके जीवन में गौप स्थान था। यही कारण है कि ऋग्वैदिक काल में पशुपालन की तुलना में कृषि उल्लेख बहुत कम हुआ है।

जनों के अधिक स्थाई रूप से बसने पर उनके पेशों में भी परिवर्तन हुआ। पशुपालन के स्थान पर उन्होनें कृषि को अपनाया। उत्तर वैदिक काल में तो कृषि और लोकप्रिय हुई। क्योंकि लोहे के उपयोग के परिणामस्वरूप भूमि को साफ करना अब सरल हो गया था। कृषि योग्य भूमि को उर्वरा अथवा क्षेत्र कहा गया है। लोग लकड़ी के फाल से परिचित थे तथा 6–8 या 12 बैल तक जोते जाते थे। सिंचाई प्रायः नहरों व चक्र की सहायता से होती थी।

ऋग्वेद में एक ही प्रकार के अनाज का ही उल्लेख मिलता है जो या तो विभिन्न प्रकार के अनाजो के सामान्य नाम का द्योतक था या बाद की तरह जौ का सूचक था। परन्तु इतना तो निश्चित है कि ऋग्वेदिक चावल से परिचित नहीं थे। प्रारम्भ में भूमि गांव की साझी सम्पत्ति समझी जाती थी। परन्तु ज्यौं–ज्यौं जन इकाइयां समाप्त होती गयी भूमि गांव के परिवारों में बटती गई। इस प्रकार निजी सम्पत्ति का जन्म हुआ।

कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाने के फलस्वरूप अनेक व्यवसायों का सूत्रपात हुआ। इनमें रथकार, कमीर, स्वर्णकार, चर्मकार तथा कुम्भकार मुख्य थे। बढ़ई इस समुदाय का एक अत्यन्त सम्मानित सदस्य बना रहा। केवल वह मात्र रथ ही नहीं बल्कि अब कृषि से सम्बन्धित उपकरणों को भी बनाता था।

कृषि ने व्यापार का मार्ग भी प्रशस्त किया। रोमिला थापर का मत है कि ''समाज के भूपतियो में से ही व्यापारी वर्ग का उदय हुआ। क्योंकि समृद्ध भूपतियों द्वारा कृषि के लिए श्रमिक रखने के कारण उनको व्यापार के लिए अवकाश व पूंजी दोनो प्राप्त हुई।

प्रारम्भ में व्यापार स्थानीय क्षेत्रों तक ही सीमति था और सम्भवतः आर्यो ने बहुत दूर जाने का साहस भी नहीं किया। फिर भी ऋग्वेद में समुन्द्री जलयानों व यात्राओं का उल्लेख मिलता है।

जो पूर्णतः काल्पनिक नहीं हो सकता। ऋग्वेद के एक स्थल पर भृत्यु की समुन्द्र यात्रा का वर्णन है। जिसने मार्ग में जलपान के नष्ट हो जाने पर आत्म रक्षा के लिए अश्विनी कुमारी से प्रार्थना की थी। अश्विनीकुमारी ने उसकी सहायता के लिए 100 पतवारो वाली नौका भेजा था।

व्यापार विनिमय प्रणाली पर आधारित विनिमय के माध्यम के रूप में **निठक** का विवरण मिलता है। लेकिन इसका समीकरण बड़ा विवादास्पद है। चूंकि आर्यों का शिल्प विज्ञान उतनी उन्नत अवस्था में नहीं था। दूसरे व्यापार विनिमय प्रणाली पर आधारित होने के कारण व्यापार स्थानीय क्षेत्रों में ही सम्भव था। कोई भी व्यापारी ऐसी स्थिति में सुदूर व्यापार करने का साहस नहीं कर सकता था।

उत्तर वैदिक कालीन अर्थ व्यवस्था

उत्तर वैदिक कालीन अर्थ व्यवस्था का सर्वाधिक उल्लेखनीय पक्ष लोगो के जीवन में स्थायित्व का होना थ। जो कृषि के अधिकाधिक प्रसार का परिणाम था। अब पशुपालन का स्थान कृषि से नगण्य हो गया था। चित्रित धूसर एवं उत्तरी काली पॉलिश मृदभाण्डो पुरातात्विक संस्कृतियों से लोगो को स्थाई जीवन की पुष्टि होती है। अब लोग यायावद व बानाबदोशी जीवन को त्याग कर एक स्थान पर बसकर कृषि करते थे।

शतपथ ब्राहमण में कृषि की चारों क्रियाओं जुताई, बुतआई, कताई, मडाई का उल्लेख किया गया है। काठक संहिता में 24 बैलो द्वारा खींचे गये हल का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राहमण में ही सीता के पिता और विदेह के राजा जनक काल में जहां मुख्य फसल जौं थी वहीं अब इसका स्थान गेहूं और चावन ने ले लिया। सौभाग्यवश अतरंजीखेड़ा से गेहूं तथा जौं और हस्तिनापुर से चावल तथा जंगली गन्ने का अवशेष मिला है।

उत्तर वैदिक काल में ही उत्तरी भारत में लोहे का प्रयोग भी शुरू हुआ। निःसन्देह लौह तकनीक ने कृषि के उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किया। लगभग 1000 बी0सी0 में पाकिस्तान के गन्धार क्षेत्र में लोहे का प्रयोग शुरू हुआ था। लगभग इसी काल में पूर्वी पंजाब, प0 उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी लोहे का प्रयोग किया गया। ईसा पूर्व 700 बी0सी0 तक लोहे का प्रसार पूर्वी उत्तर प्रदेश तक हो गया। उत्तर वैदिक साहित्य में लौह को कृष्ण अथस कहा गया है।

कृषि के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शिल्पों का भी उदय उत्तर वैदिक कालीन अर्थ व्यवस्था की विशेषता थी। वाजसनेयी तथा तैत्तरीय ब्राहमण में इस समय के विभिन्न व्यवसायियों की एक लम्बी सूची निकली है। इसमें स्वर्णकार, रथकार, चर्मकार, जुलार्ह, रज्जुकार, कुम्भकार, वैद्य, ज्योतिषी आदि प्रमुख थे। स्वर्ण तथा लोहे के अतिरिक्त इस युग के आर्य टिन, तांबा, चांदी, शीशा आदि धातुओं से भी परिचित थे।

उत्तर वैदिक काल के लोग चार प्रकार के मृदभाण्डो से परिचित थे। काला और लाल मृदभाण्ड, काली पोत वाले मृदभाण्ड, चित्रित धूसर मृदभाण्ड, लाल मृदभाण्ड। इनमे लाल मृदभाण्ड सबसे अधिक प्रचिलत था और लगभग समूचे उत्तर पश्चिम प्रदोश में पाया गया है। लेकिन चित्रित धूसर मृदभाण्ड इनमें सर्वोपरित वैशिठठय सूचक है।

उत्तर वैदिक काल में व्यापार एवं वाणिज्य उन्नति पर था। ब्राहमण ग्रन्थों में श्रेष्ठि का भी उल्लेख मिलता है। श्रेष्ठी श्रेणी का प्रधान होता था। ब्याद दर पर धन देने का पेशा काफी प्रचलित था। तैत्तरीय संहिता में ऋण के लिय कुसीद शब्द तथा शतपथ ब्राहमण में उधार देने वाले के लिये कुसीदिन शब्द मिलता है।

व्यापार आज भी विनिमय पद्धति पर आधारित था। नियमित सिक्कों का प्रचलन नहीं था। निठक शतमान, कृष्णल, आदि माप की विभिन्न इकाइयां थी।

इस प्रकार कृषि प्रधानता, लोहे का प्रचलन, विभिन्न प्रकार के शिल्पों का उदय, श्रेणी व्यवसाय आदि उत्तर वैदिक कालील अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता थी।

ऋग्वेदिक कालीन धर्म व्यवस्था

ऋग्वैदिक आर्यो का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन जितना ही सरल था धार्मिक जीवन उतना ही कठिन एवं जटिल था। ऋग्वेद में हमें आर्यों की अत्यन्त अविकसित धार्मिक विचार धारा से लेकर सम्यक् रूप से विकसित विचार धारा का दर्शन होता है। इसके क्रमिक विकास में परमपुरूष से लेकर प्रकृति की विभिन्न शक्तियां, बहुदेवसाद, एकेश्वरवाद तथा स्वर्ग, नरक, गोह, पुर्नजन्म, आदि का चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त पितृदेव, आचार्य देव, मातृदेव व अतिथि देव की भी झांकी मिलती है।

1. प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण : अनन्त आकाश को जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारागज, वर्षा, भीषण गर्जन आदि थे उनको धौस के रूप में अपना देवता मान लिया। इसी क्रम में पृथ्वी को भी उसने अपना देवता मान लिया। इस प्रकार द्यौस व पृथ्वी आरम्भ में आर्यों के देवता बन गये। इसी प्रकार अन्य प्राकृतिक शक्तियों को अपना देवता स्वीकार कर लिया।
2. प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण : दैवीकरण के बाद आर्यों ने प्राकृतिक शक्तियों का मनवीकरण किया जिनको मुख्यतः तीन भागो में विभाजित किया गया है।

1. पृथ्वी के देवता : पृथ्वी, अग्नि, सोम, बृहस्पति, नदियों के देवता आदि
2. अंतरिक्ष देवता : इन्द्र, रूद्र, वायु, पर्जन्य, मातरश्विन
3. आकाश के देवता : द्यौस, वरूण, सूर्य, सविता, पुषन, विष्णु आदित्य, उषा आदि।

इस प्रकार आर्यो ने अपने देवताओं की कल्पना प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य रूप में कर डाला और उनमें समस्त मानवेचित गुणों को आरोपित कर दिया। फर्क इतना था कि देवता मनुष्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और अमर माने गये।

यूनान : यूनान में भी भारत की तरह देवताओं का मानकीकरण किया गया था। लेकिन उनके देवता में मानव के गुण दोष सबलातए–निर्बलताएं दोनो थी। लेकिन आर्यों के देवता में गुण ही थे दोष नहीं थे।

सर्व शक्तिमान होते हुए आर्यों ने अपने देवताओं स्वेच्छाचारी, अनियन्त्रित होने से बचाने के लिए उन पर ऋत तथा व्रत धर्म लाद दिया। ऋत नैतिक व्यवस्था को कहा गया है जो देवताओं का नियामक था। उन्हें सदाचार तथा नैतिकता की प्रेरणा प्रदान करता था। इसी ऋत व्यवस्था से सभी देवता संचालित थे। ऋत् व्यवस्था के नियामक वरूण थे जो सभी को उनके कर्मों तथा कुकर्मों के अनुसार दण्डित तथा पुरस्कृत करते थे।

इस प्रकार भारतीय आर्यों का आदि धर्म प्रकृति के मानवीकरण एवं मानवीकृत उन शक्तियों में ऋत संरोपण पर आधारित था।

मानवीकरण ने उपासक व उपास्थ के बीच धनिष्ठता स्थापित कर दी। अगर मानवीकरण न किया होता तो आर्यों के धार्मिक जीवन में वह आहल्लाद न आ पाता जिससे उनके जीवन का प्रत्येक क्षेत्र ओतप्रोत है। क्योंकि आतांकिल उपासक–मानव, उपास्थ–प्राकृतिक शक्तियों के प्रति नतमस्तक भले हो जाता परन्तु श्रद्धा के अभाव में उसकी उपासना में वह सदृश्यता न हो पाती।

इस प्रकार आर्य देवी देवताओं में आपस में नियंत्रित करने वाला ऋत न होता तो वे अनैतिक तथा स्वेच्छाचारी हो जाते फिर मानव व देव में अन्तर ही क्या रह जाता।

देवातिदेव की खोज : जैसे–जैसे समय बीतता गया वैसे–वैसे देवी देवताओं की संख्या बढने लगी। वैदिक ऋषियों ने जिस समय जिस देवता की पूजा करते थे। उसी का सर्वोच्च देवता स्वीकार करते थे। तथा मैक्समूलर ने हेनोथीसम कहा है।

अंततः वैदिक विकास के साथ–2 आर्यों में यह प्रश्न उठने लगा कि आखिर बहुसंख्यक देवी देवताओं में सर्व प्रथम देवता कौन है ?

इसके लिये आर्यों ने देवतओं को वर्गों में संगठित करना आरम्भ कर दिया तथा आकाश व पृथ्वी को द्यावापृथ्वी, मित्र वरूण, उषा रात्रि आदि। इससे देवताओं की संख्या कम हुई। प्रारम्भ में वरूण को देवातिदेवव माना गया। इसके बाद इन्द्र को माना गया।

एकेश्वरवाद एवं परमतत्व की खोज : आर्यों की जिज्ञासा देवातिदेव इन्द्र तक ही सीमित नहीं रही उन्होने इन समस्त देवताओं के उपर अंत में परमतत्व की प्रतिष्ठता आरोपित की जिसे उन्होंने कभी हिरण्यगर्भ, कभी प्रजापति और कभी विश्वकर्मा के नाम से प्रख्यात किया।

एकेश्वरवाद की यह पराकाष्ठा थी। इसी एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा के साथ आर्यों ने एक तत्व की भी स्थापना की जिसे उन्होने **सत्** के नाम से पुकारा।

इस प्रकार ऋग्वैदिक आर्यों के धार्मिक विकास की तीन स्थितियों का ज्ञान होता है। बहुदेववाद, एएमेश्वरवाद, एकास्मवाद।

पूजा विधान : ऋग्वैदिक आर्य निरांत प्रवृत्ति मार्गों का उसके जीवन में संयास और गृहत्याग का स्थान न था। देवाश्रम में ही देवापासना और देवभजन के द्वारा कल्याण प्राप्ति की चेष्ठा करता था।

देवताओं की उपासना यज्ञो द्वारा की जाती थी। ऋग्वेद में मंदिर तथा मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं मिलता। यज्ञ में दूध, घी, मांस, अन्न तथा सोम की आहूतियां दी जाती थी। समान्यतः यज्ञ प्रत्येक मनुष्य व्यक्तिगत रूप से अपने लिये स्वंय करता था। कभी–2 वह किसी ब्राहमण पुरोहित की भी सहायता लेता था। ऋग्वेद में यज्ञो का काफी महत्व था। ऋग्वेद का कथन है अग्निदेव जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है वह स्वर्ग में चन्द्र बन जाता है।

देवोपासना : मुख्यतः भौतिक कल्याण जैसे युद्ध में विजय, अच्छी खेती, संतान प्राप्ति, आदि के लिये की जाती थी। उपासना का लक्ष्य परमार्थिक न होकर सांसारिक था।

ऋग्वेद में देवपूजा के साथ पितृपूजा की भी स्थापना हो गयी थी। एक स्थान पर देवो और पितरों का साथ–साथ उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेद में यज्ञों तथा स्मृतियों के साथ मनुष्य की नैतिकता पर काफी जोर दिया गया था। एक स्थान पर एक उपासक अपने आराध्यदेव से प्रार्थना करता है कि ''है देव यदि हमने अपने किसी सहृदय का अहित किया हो तो हमे इस पाप से मुक्त कर''।

दूसरे स्थान पर ऋषियों ने निर्धन, भूखे, असहाय मनुष्यों के प्रति उदार और दानशील होने की सम्मति दी है। अन्य स्थलों पर जादू, टोना, टोटका, धोखा आदि की घोर निन्दा की गई है।

ऋग्वेद में स्वर्ग तथा नरक का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। स्वर्ग के विषय में एक स्थल पर चर्चा मिलती है। स्वर्ग के विषय में एक स्थल पर चर्चा मिलती है कि ''वहां दिन रात तथा जल सभी सुन्दर तथा आरामदायक होते हैं। वहां मनुष्य बलिष्ठ तथा सुन्दर शरीर को प्राप्त करता है। पूण्यकर्मी प्राणी अपने राशी कर्मों का फल प्राप्त करते हैं।

नरक की कल्पना एक निम्न स्तरीय अधंकूप से की गयी है। पापकर्ता नरक में जाता है। ऋग्वेद अमरता का भी उल्लेख करता है। परन्तु मोक्ष का नहीं। कदाचित उस समय तक मोक्ष के स्थान पर स्वर्ग ही मनुष्य का लक्ष्य था।

ऋग्वैदिक ऋषि आत्मवादी था। वह आत्मा में विश्वास करता था। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओ से अनुमान होता है क आर्य पुर्नजन्म को भी मानते हैं परन्तु विषय में कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

ऋग्वेदिक ऋषियों के विचवार पूर्णतया आशावादी थे। जिसमें निराशावाद की कोई झलक नहीं मिलती। जीवन चाहे सत्य रहा हो या क्षुद्र वे उसका पूर्ण उपयोग करना चाहे रहे थे। उन्होनें जीवन का बंधन मानकर उसके सुखों की उपेक्षा करने का कभी प्रयास नहीं किया और न ही काया क्लेष में आदि में ही विश्वास किया।

मौर्य प्रशासन

मौर्य साम्राज्य के प्रतापी तथा योग्य राजाओं ने पहले पहल भारत वर्ष को एक राजनीतिक सूत्र में आवद्ध करने का प्रयत्न किया था। इस राजनैतिक समीकरण का ताज मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त का आदर्श चरितार्थ किया था। इस नवजात मगध साम्राज्य में मापक रखने और उसकी श्री स्मृद्धि की वृद्धि करने, विदेशी खतरा का सामना करने, अस्त–व्यस्त भारत के असंख्य टुकडो को जोड़कर एक करने, चक्रवर्ती आदर्श को व्यवहारिक राजनीति में एक वास्तवीकरण के रूप में प्रतिष्ठित करने भारतीयों को विभिन्न कार्य क्षेत्रों में एक महान प्रयत्न के लिये उत्साह से अनुप्राणित करने और भारत को राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टितयों से बाहरी दुनिया के सम्पर्क में लाने के लिए एक कुशल व मजबूत प्रशासन की आवश्यकता थी जो कि मौर्य प्रशासक बन सबसे चरितार्थ करने में एकदम सफल रहे।

मौर्य युग में राजतंत्र की विजय हुई थी। इस युग में गणराज्यों का ह्रास होने लगा था और शासन सत्ता अत्यधिक केन्द्रित होती गई। सौभाग्य वंश मौर्य साम्राज्य भी राजनीतिक तथा प्रशासकीय पद्धति के अध्ययन के लिये प्रमाणिक सामग्री की ऐसी प्रचूरता है कि जैसी मध्यकालीन इतिहास में मुगल के पूर्व किसी अन्य काल के सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं है।

मेगस्थनीज का विवरण कौटिल्लय : अर्थशास्त्र, अशोक के अभिलेखों आदि का यदि सम्यक ढंग से विवेक किया जाये तो एक दूसरे के पूरक ही सिद्ध होते हैं दिव्यापदान तथा मुद्राराक्षस जैसे साहित्यिक प्रभाण यद्यपि काफी बाद के है तथापि ऐसा लगता है उनके कतिपय भागो में जिन परम्पराओं का उल्लेख है वे यथावत है। इसी प्रकार रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख से भी जिसका समय 150 ई0 है मौर्या के अधीनस्थ गुंजरात के प्रादेशिक प्रशासन की सुन्दर झलक मिलती है। मौर्य प्रशासन विशेष रूप से चन्द्रपाल के प्रशासन की जानकारी का प्रमुख स्रोत कौटिलय अर्थशास्त्र है जिससे ज्ञात होता है कि इसकी शासन व्यवस्था का मूलमंत्र जनकल्याण था। जैसा कि इसके एक उदाहरण प्रतीत होता है।

प्रजा सूखे सूखम राजः प्रज्यनाम चहिते हितमुं।
नात्मत प्रियम् हितम् राजः प्रजामन च हिते हितमू।।

मौर्य प्रशासन की व्यवस्था करने के लिये इसकी तीन भागो में बांटा गया है :–

1. केन्द्रीय शासन 2. प्रांतीय शासन 3. स्थाई शासन व्यवस्था

साम्राज्य का केन्द्रीय शासन पाटलीपुत्र से सम्राट स्वंय करता था तथा प्रान्तीय शासन सम्राट की ओर राजकुमार तथा महामात्र करते थे।

1. केन्द्रीय शासन : तत्कालीन आर्थिक, परिस्थितियां तथा उनकी अपनी आवश्यकताओं ने मौर्य शासन प्रणाली को केन्द्रीयत नौकरशाही का रूप दे दिया। मौर्य शासन प्रणाली का केन्द्र बिन्दु राजा होता था। जिसमें साम्राज्य की सभी व्यवस्थापिका न्यायपालिका, कार्यपालिका शक्तियां निहित थी। इस काल तक उसके अधिकारों तथा शक्ति में असाधारण वृद्धि हो चुकी थी। अशोक ने तो इसकी व्याख्या पैतृक निरंकुशताबाद के रूप में किया था जिसका सामूहिक संदेश था कि

सारे मनुष्य मेरे बच्चे है। परम्परागत राज शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार राजा धर्म का रक्षक है। निर्माता नहीं। राज शासन की वैधता इस बात पर निर्भर थी कि वह धर्म के अनुकूल हो। अतः राजा की प्रत्येक आशा धर्म तथा लोक व्यवहार के अनुकूल होनी चाहिए। लेकिन कौटिल्य ने राजा को अत्यधिक शक्ति प्रदान करते हुए एक नया प्रतिमान स्थापित किया है जिसके अनुसार राजाशा, धर्म तथा लोक व्यवहार और चरित्र सामाजिक सदाचार, का भी अतिक्रमण कर सकती है तथा उन सबसे उपर है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि इस युग में राजाज्ञा को सर्वश्रेष्ठ प्रमुखता दी गयी थी।

चन्द्रगुप्त तथा अशोक दोनों स्फूर्तिवान, उत्साही, उद्यमी तथा प्रजाहितैषी थे। चन्द्रगुप्त की कार्य तत्परता के सम्बन्ध में मेगस्थनीय ने लिख है कि ''राजा दरबार में बिना व्यवधान के कार्यरत रहता था। '' कौटिल्य ने कहा है कि जब राजा दरबार में बैठा हो तो उसे बाहर जनता से प्रतीज्ञा नहीं करवानी चाहिये। क्योंकि जब राजा प्रथा के लिये दुर्लभ तथा अपने कार्य को अधिकरियों के भरोसे छोड़ देता है तो वह पूजा में विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है''

मैगस्थनीज : मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रजा प्रत्येक समय उसका दर्शन कर सकती थी। यहां तक जब वह मालिश करा रहा हो उस समय भी। अशोक के छठे शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने एक विज्ञप्ति जारी किया था कि वह लोकमत की जानकारी तथा प्रजा के कार्य के लिये प्रत्येक स्थान पर मिल सकता है और प्रजा की भलाई में उसे बडा संतोष मिलता है।

राजा ही राज्य की नीति निर्धारित करता था और अपने अधिकारियों के राजाज्ञों द्वारा समय–समय पर निर्देश दिया करता था। चन्द्रगुप्त के समय पर गुप्तचरों के माध्यम से दूरस्थ प्रदेशों में शासन कर रहे अधिकारियों पर सम्राट पूरा नियंत्रण रखता था। अधिकारियों की नियुक्ति देश की आन्तरिक रक्षा और शान्ति युद्ध संचालन, सेना का नियंत्रण आदि सभी राजा के अधीन था। इस युग में राजाओं को देवाना प्रिय अर्थात देवताओं का प्यारा कहा जाता था। कदाचित प्रिय दर्शन की शक्ति में भी वृद्धि हो रही थी। अब वह प्रधानमंत्री का कार्य करने लगा था। यह चन्द्रगुप्त तथा कौटिल्य के पारस्परिक सम्बन्ध से स्पष्ट हो जाता है। डा0 स्मिथ ने मौर्य युग के राजाओं को निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी कहा हैं। लेकिन यह अतर्क संगत है। कौटिल्य अर्थ शास्त्र से ज्ञात होता है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। उसका एक मात्र उद्देश्य प्रजा हित था।

मंत्रिमण्डल : राजा अपने सहायतार्थ मंत्रियों की नियुक्ति करता था। राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने मंत्रियों के साथ परामर्श करेगा। कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजा की प्रभुत्ता बिना सहायता के सम्भव नहीं हो सकती। अब राजा को सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए तथा उनसे मंत्रणा लेनी चाहिए। इस प्रकार राज्य के सर्वोच्च अधिकारी मंत्री कहलाते थे। उनकी संख्या तीन या चार होती थी। इनका चयन अमात्य वर्ग से होता था। ये मंत्री एक प्रकार से अंतरंग मंत्रिमण्डल के सदस्य होते थे। राज्य के सभी कार्य इसी मंत्रिमण्डल के विचार विमर्श से होता था।

मंत्रीमण्डल के अतिरिक्त एक मंत्रि परिषद् भी होती थी। अशोक के शिलालेखों में ''परिधा' का उल्लेख मिलता है। जहां तक मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद् के अधिकार का प्रश्न है। उनका मुख्य कार्य राजा को परामर्श देना थ। लेकिन अंतिम निर्णय राजा का ही होता था। अशोक के छठें शिलालेख से ज्ञात होता है कि परिषद् राज्य की नीतियों अथवा राजाज्ञाओं पर विचार विमर्श करती थी। यदि आवश्यक समझती थी तो उसमें संसोधन का सुझाव देती थी। रोमिला थापर का विचार है कि मंत्रिपरिषद् को कोई सुनिश्चित राजनीतिक मर्यादा नहीं प्राप्त थी। उनकी शक्ति से राजा पर निर्भर होती थी। कौटिल्य के अनुसार चन्द्रगुप्त की मंत्रिपरिषद् में 18 सदस्य थे। ऐसा लगता है कि मंत्रियों का पद मंत्रिपरिषद् से उंचा था। मंत्रियों के ही परामर्श से सम्पूर्ण राज्य का संचालन होता था।

राज्य के प्रमुख कर्मचारी तथा विभाग : शासन का भार मुख्यतः एक विशाल वर्ग पर था। जो साम्राज्य के विभिन्न भागो से शासन का संचालन करते थे। अर्थशास्त्र में सबसे उंचे स्तर के कर्मचारियों को तीर्थ कहा गया है। ऐसे 18 तीर्थों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है जिनमें से मुख्यतः मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, समाहती, सन्निधावा, पदैढता, नायक, हारिक, कर्मान्तिक, मंत्रीपरिषद् का अध्यक्ष, दण्डफल, दुर्गपाल आदि है।

अर्थ शास्त्र में तीर्थ शब्द एक ही दो स्थान पर मिलता है। लेकिन अधिकतर स्थानों पर इन्हें अमात्य, महाभात्र या अध्यक्ष आदि कहा गया है। ये महत्वपूर्ण तीर्थ या अमात्य मंत्री या पुरोहित थे। राजा इन्हीं के परामर्श से अन्य मंत्रियों तथा अमात्यों की नियुक्ति करता था। डा0 रोमिला थापर का विचार है कि केन्द्रीय प्रशासन के नियंत्रक में दो मुख्य तथा महत्वपूर्ण पद कोषाध्यक्ष तथा मुख्य समाहर्ता के थे। कोषाध्यक्ष का कार्य नकद नकद आय का हिसाब रखना और वस्तुओं के रूप में प्राप्त आय को संग्रहित करना था।

मुख्य समाहर्ता : लिपिकों के एक निकाय क सहायता से साम्राज्य के विभिन्न भागों से प्राप्त करों का लेखा जोखा रखता था। प्रत्येक प्रशासकीय विभाग का समुचित हिसाब रखा जाता था जिसे सारे मंत्रियों द्वारा संयुक्त रूप से राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। उसका उद्देश्य सम्भवतः यह था कि गबन व धोखेबाजी की संभावना न रहे। प्रत्येक विभाग में अधीक्षकों तथा सहायक अधिकारियों का एक बड़ा वर्ग होता था। अधीक्षक स्थानीय केन्द्रों पर रहते थे और स्थानीय प्रशासन तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य कार्य करते थे।

अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार अध्याय में 26 अध्यक्षों का उल्लेख है। ये विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे और मंत्रियों का निरीक्षण में कार्य करते थे। कतिपय अध्यक्ष इस प्रकार के थे। कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, बन्धनागाध्यक्ष आदि। इन अध्यक्षों के कार्य विस्तार से ज्ञात होता है कि राज्य के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन और अध्ययन से कार्य विधि पर पूरा नियंत्रण रखता था। केन्द्रीय महामात्य तथा अध्यक्षों के अधीन अनेक निम्न स्तर के कर्मचारी होते थे जिन्हें युक्त और उपयुक्त की संज्ञा दी गयी थी। अशोक के शिलालेखों में तीसरे भी युक्त का उल्लेख मिलता है।

केन्द्रीय शासन का एक महत्वपूर्ण विभाग सैन्य विभाग था। यूनानी लेखकों के अनुसार चन्द्रगुप्त के सैन्य विभाग में 60000 पैदल, 50000 अश्व, 9000 हाथी तथा 400 रथों की एक स्थाई सेना थी। इसकी देखरेख तथा रख रखाव के लिए एक पृथक सैन्य विभाग था। इस विभाग का संगठन 6 समितियों के हाथ में था। प्रत्येक समिति में 5–5 सदस्य होते थे।

न्याय व्यवस्था : सम्राट न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। मौर्य साम्राज्य में न्याय के लिये अनेक न्यायालय थे। सबसे नीचे ग्राम स्तर पर न्यायालय थे। जहां गामणी तथा ग्रामबुद्ध या ग्राम मुखिया कतिपय मानको को निस्तारण करते थे। ग्राम न्यायालय से ऊपर संग्रहण, प्रोणमूध, स्थानीय व जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। इन सबसे ऊपर पाटलिपूत्र का केन्द्रीय न्यायालय था। यूनानी लेखक ने ऐसे न्यायाधीशों की भी चर्चा किया है जो भारत में रहने वाले विदेशियों के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे :–

1. धर्म स्थीय 2. कंटक शोधन इनमें धर्म स्थीय एक प्रकार से दीवानी न्यायालय के समान थे। कंटक शोधन न्यायालय में राजा तथा प्रजा के बीच के विवाद सुने जाते थे। इन्हें हम एक प्रकार से फौजदारी न्यायालय कह सकते थे। इसके आलावा चोरी, डाके, मारपीट के मामले भी इनमें पेश किये जाते थे। किन्तु समाज विरोधी तत्वों को समुचित दंड के देने का कार्य मुख्यतः कंटक शोधन न्यायालय ही करते थे।

नीलकंठ शास्त्री के अनुसार ''कंटक शोधन न्यायालय एक नये प्रकार के न्यायालय थे जो मौर्य साम्राज्य की अधिकाधिक जटिल सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बनाये गये थे ताकि एक अत्यन्त संगठित शासन तंत्र के विविध विषयों से सम्बद्ध निर्णयों

को कार्यान्वित किया जा सके। वे एक प्रकार के विशेष न्यायालय थे। जहां अभियोगों पर तुरंत विचार किया जाता था।''

मौर्य केन्द्रीय प्रशासन का एक बुनियादी पक्ष गुप्तचर प्रणाली थी। अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि गुप्तचरों को एकान्तवासियों गृहस्थों, व्यापारियों, संवासियों, विद्यार्थियों, भिखारियों तथा वेश्याओं के भेष में कार्य करना चाहिए। मौर्य काल में हमें दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है : 1. संस्था 2. संचरा।

संस्था : वे गुप्तचर जो एक ही स्थान पर संस्थाओं में संगठित होकर–कार्यातक, क्षात्र, उवस्थित, गृहस्तिक, वैदिक, तापस आदि के वेष में कार्य करते थे। **संचार :** ऐसे गुप्तचर थे जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे। रोमिला थापर के अनुसार ''सामान्यतया नहीति निर्धारक का काम केन्द्र में होता था। लेकिन गुप्तचर उसे स्थानीय हितों को दृष्टि्गत रखते हुए कार्यान्वित करते थे'' अशोक ऐसे अभिकर्ताओं की भी चर्चा करता है जो उसके पास तक समाचार पहुंचते थे और सामान्यतः उसे लोकमत से अवगत कराते थे।

प्रान्तीय प्रशासन

मौर्य के साम्राज्य को कुशल प्रशासन चलाने के लिये कई–कई प्रशासनिक इकाइयों में बाटा गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में इन प्रान्तों की संख्या कितनी थी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन अशोक के समय इन प्रान्तो की संख्या पांच होने का प्रमाण मिलता है।

1. पहल प्रान्त उत्तरापथ था जिसकी राजधानी वहाशिका थी। इसमें कम्बोज, गन्धार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि थे।
2. दूसर प्रांत अवन्तीराठत था। इसकी राजधानी उज्जवनी थी।
3. तीसरा कलिंग था जिसकी राजधानी वोसली थी। अवन्ती प्रांत में काठियावाड़, गुजरात, मालवाा और राजूपताना आदि प्रदेश था।
4. दक्षिणापथ : इसकी राजधानी सूवर्णगिरी थी। इसके अन्तर्गत विध्यांचल के दक्षिण का समस्त प्रदेश था।
5. मध्यप्रदेश : इसकी राजधानी पाटलिपूत्र थी। इसमें उत्तर प्रदेश तथा प्राच्यप्रदेश बिहार और बंगाल सम्मिलित था। यह प्रांत स्वंय राजा द्वारा संचालित होता था। रोनिका थापर के अनुसार ''प्रत्येक प्रांत एक राजकुमार तथा राजपुरूष के अधीन होता था जिसकी पद मर्यादा महाराज्यपाल की होती थी। अपेक्षाकृत छोटी इकाइयों पर शासन करने के लिए राज्यपाल का चुनाव स्थानीय लोगो में किया जाता था। इनका विचार है कि केन्द्रीय शासन की तरह प्रांतीय शासन में भी मंत्रिपरिषद होती थी जो केन्द्रीय मंत्रिपरिषण्द् की अपेक्षा स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली होती थी और महाराज्यपाल पर अंकुश रखती थी। रोमिला थापर ने दिव्यावदान के कुछ उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकाला है कि ''प्रान्तीय मंत्रिपरिषद् का सम्राट से सीधा सम्पर्क होता था। जैसा कि अशोक के शिलालेखों से भी ज्ञात होता है। हिसाब कितब की अतिरिक्त जांच कराने, प्रान्तीय शासन पर अंकुश रखने के लिय अशोक हर पांचवे वर्ष प्रान्तों में महापासों को भेजता था।

प्रत्येक प्रान्त का उपविभाजन जिलों में किया गया था जिन्हें आहार या विषय कहा जाता था जो सम्भवतः विषयपति के अधीन था। इस जिले या विषय के निम्नलिखित विभाग होते थे। अ स्थानीय : यह 200 गांव के बराबर होता था। इसके बाद द्रोणमुख 400 ग्राम, पुनः खावर्टिक 200 ग्राम, संग्रहण यह 100 ग्राम के बराबर होता था। रोमिला थापर का सुझाव है कि प्रत्येक जिले का विभाजन ग्राम समूहों में हुआ था तथा प्रशासन की अंतिम इकाई ग्राम होती थी। ग्रम समूह में दो अधिकारी होते थे। एक लेखपाल व दूसरा कर समाहर्ता लेखपाल सीमाओं की देखभाल करता

था। भूमि तथा दस्तावेजो का पंजीकरण करता था। जनसंख्या की गणना तथा पशुओं का लेखा रखता था। कर समाहर्ता की जिम्मेदारी विभिन्न प्रकार के राजस्व का एकत्रीकरण करना था। प्रत्येक ग्राम के अपने पदाधिकारी होते थे। जैसे मुखिया लेखपाल तथा कर समाहर्ता के सामने उत्तरदायी हाता था। ग्राम स्तर अधिकारियों के वेतन या तो कर देकर या भूमि अनुदान द्वारा चुकाया जाता था।

मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया है। इसके अनुसार नगर का शासन प्रबन्ध 30 सदस्यों का एक मण्डल या बोर्ड करता था। मण्डल के 06 समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में 5 सदस्य होते थे। यह आधुनिक काल में म्यूनिसिपल बोर्ड की तरह काम करता था। प्रथम समिति उद्योग शिल्पों का निरीक्षण करती थी। दूसरी विदेशियों की देखरेख करती थी। तीसरी जन्म मरण का लेखा करती थी। चौथी व्यापार और वाणिज्य थे। पांचवी–नवनिर्मित वस्तुओं के विक्रय का निरीक्षण करती थी। छठी–समिति का कार्य बिक्री कर वसूल करना था।

रोमिला थापर के अनुसार ''नगर प्रशासन का अध्यक्ष अधिकारी वर्ग होता था। नगर अधीक्षक जिसका अर्थशास्त्र में भी उल्लेख मिलता है शान्ति व्यवस्था की रक्षा करने और नगर को साफ सुथरा रखने का कार्य करता था। नगर अधीक्षक की सहायता के लिये एक लेखपाल तथा एक कर समाहर्ता होता था जिनके कार्य ग्राम समूह के लेखपाल के तथा कर समाहर्ता के समान थे।

मौर्यकालीन समाज

मौर्य साम्राज्य की सामाजिक दशा सम्बन्धी जानकारी के लिये हमको पर्याप्त सामग्री मिलती है। जिनमें कौटिल्य अर्थशास्त्र मेगस्थनीज कृत इण्डिका, अशोक के अभिलेख तथा अन्य विदेशियों के वर्णन आदि प्रमुख है।

मौर्य काल में हिन्दु सामाजिक व्यवस्था की दो विशेष संस्थाएं वर्ण और आश्रम एक निश्चित अवस्था तक पहुंच गयी थी। ग्रीक लेखकों के विवरणों से ज्ञात होता है कि कोई भी व्यक्ति अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकता था और न ही अपनी जीविका को छोड़कर किसी अन्य की जीविका या शिल्प को अपना सकता था। उदाहरणार्थ : सैनिक, किसान या शिल्पकार, दार्शनिक नहीं बन सकता था और दार्शनिक न उनके पेशों को अपना सकता था।

पूर्ववर्ती धर्म शास्त्रों की भांति कौटिल्य ने भी वर्ण आश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है। अशोक के शिलालेखों में भी हमें गृहस्थों प्रव्रजिवों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मौर्य युग में चार आश्रमों की प्रथा अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी। कौटिल्य के अनुसार वर्ण आश्रमों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। धर्म शास्त्रों के अनुसार कौटिल्य ने भी चारों वर्णों के व्यवसाय निर्धारित किये थे। किन्तु क्षुर्दों को शिल्पकला और सेवावृत्ति के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से आजीविका चलाने की अनुमति दिया था। इन्हें सम्मिलित रूप में वार्ता कहा गया है। निश्चित है कि इस व्यवस्था से सूर्दों के आर्थिक सुधार का प्रभाव उसकी सामाजिक स्थिर पर भी पड़ा होगा। 2. अर्थशास्त्र में एक और परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है वह यह है कि सूद्रों को आर्य कहा गया है तथा इसको भिन्न माना गया है और कहा गया है कि आर्य सूद्र को दास नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मौर्य काल में इसके पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा सूद्रो की स्थिति में कुछ सुधार हुआ था।

वैसे तो समाज में ब्राहमणों का स्थान सर्वोच्च था। किन्तु मनु तथा पूर्वगामी धर्म सूत्रों की भांति इस सर्वोच्चता को बार–बार दोहराने का प्रस्ताव अर्थशास्त्र में प्रयास नहीं किया गया है। इस समय भी ब्राहमण समाज का धार्मिक तथा बौद्धिक नेतृत्व करता था तथा ये ही शिक्षक तथा

पुरोहित होते थे। ब्राहमणों द्वारा यज्ञ करवाये जाने का उल्लेख मेगस्थनीज ने भी किया है। राजा के पुरोहित, कानूनमंत्री, शिक्षक आदि ब्राहमणों में से ही नियुक्त किया जाते थे।

रोमिला थापर का विश्वास है कि ''वर्ण व्यवस्था ब्राहमण सिद्धान्तकारों के अनुसार सुचारू रूप से नहीं चल पायी। सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रथम तीन वर्गों को जो द्विज कहलाते थे सूद्रो और अछूतों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त थे। लेकिन वैश्य जो शास्त्रीय दृष्टि से तो द्विज थे अपनी विशेष अधिकृत स्थिति का समुचित लाभ नहीं उठा पाते थे। वे प्रथम दो वर्णों द्वारा सामाजिक रूप से बहिष्कृत थे। फिर भी वैश्य आर्थिक दृष्टि से इस समय तक शक्तिशाली हो चुके थे। क्यौंकि वाणिज्य उन्हीं के हाथो में था इस कारण इनके बीच संघर्ष अनिवार्य था।

पुनः इनका विचार है कि ''अशोक ने सामाजिक रैम्प पर जो बल दिया गया था उससे भी सामाजिक तनावों के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। ये अपने आक्रोश को आंशिक अभिव्यक्ति देने के लिए अरिवश्वरवादी सम्प्रदायों विशेष रूप से बौद्ध मत का समर्थन किया। इसका परिणाम शायद हुआ कि धार्मिक क्षेत्र में ब्राहमणों और अनिश्वरवादी मतों के बीच वैमनस्य और बढ़ गया।

कौटिल्य ने मौर्यकालीन समाज में इन चार वर्षों के अतिरिक्त वर्ण संकट जातियों का भी उल्लेख किया है। इनकी उत्पत्ति धर्म शास्त्रों में अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों के फलस्वरूप बताई गयी है। इन वर्ण संकट जातियों में अम्वष्क निषाद, धारशव, रथकार, भत्ता, बैदेहक, मागध, सुत, पुल्लकस, वेण, चांडाल, श्वपाक इत्यादि प्रमुख हैं। कौटिल्य ने चांडालो के अतिरिक्त अन्य वर्ण संकट जातियों को सूद माना है। इनके अतिरिक्त तंतुवाय, रजक, दर्जी, सुनार, लुहार, बढई आदि व्यवसाय पर आधारित वर्ण जाति का रूप धारण कर चुके थे। जाति प्रथा की कुछ विशेषताओं की पुष्टि मेगस्थनीज ने अपनी इण्डिका में भी किया है जिसका विवरण उपर किया जा चुका है।

इस विवरण के अलावा मेगस्थनीज अपनी इण्डिका में लिखता है कि मौर्य समाज सात वर्गों में बटा था। उसका यह वर्गीकरण भारतीय ग्रन्थों में वर्णित वर्गीकरण से भिन्न था। उसके अनुसार दार्शनिक, किसान, सैनिक, शिल्पी, अहीर या चरवाहे, कारीगर या शिल्पी, न्यायाधिकारी और पार्षद थे। मेगस्थनीज का यह वर्णन भारतीय वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था से मेल नहीं खाता। दार्शनिकों की जाति को वह दो वर्गो में बाटता है 1. ब्राहमण 2. श्रमण। ब्राहमणों की वृत्ति के बारे में मेगस्थनीय का विचार था कि यज्ञ, अन्त्येष्टि, क्रिया तथा अन्य धार्मिक कृत्य करवाने के बदले उन्हें बहुमूल्य दक्षिणा निकलती थी। श्रमकों को भी इसने दो वर्गों में बाटा है। प्रथम श्रेणी में श्रमण वनों में रहते थे और दूसरे आयुर्वेद में कुशल होते थे। जो समाज में सम्मलित थे। रोमिला थापर का मत है कि इन दार्शनिकों से कर नहीं किया जाता था। किसानों में मुख्यतः कृषक, सूद्र तथा भूमि में कार्य वाले श्रमिक थे। सैनिक क्षत्रिय वर्ण के लोग थे। चरवाहे या तो सूद्र होते थे या अश्पृश्थ। शिल्पियों की जाति उनके व्यवसाय विशेष पर निर्भर करती थी। न्यायाधिकारी व पार्षद स्वस्तत्या शासन प्रणाली के अंग थे। वे या तो ब्राहमण होते थे या तो क्षत्रिय। रोमिला थापर का मत है कि मेस्स्थनीज ने मौर्य कालीन समाज का जो सप्तवर्गीय चित्ररण प्रस्तुत किया है उसने इसमें जाति, वर्ण और व्यवसाय के अन्तर को भुला दिया है। सम्भवतः एक विदेशी होने के नाते वह भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने में असमर्भ रहा।

मौर्य कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति स्मृतिकाल की अपेक्षा अब अधिक सुरक्षित थी। उन्हें पुर्नविवाह तथा वियोग की अनुमति थी। इसके बावजूद भी इस काल की स्त्रियों की दशा को बहुत उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। वे पति की इच्छा के विरूद्ध कोई कार्य नहीं कर सकती थी। यहां तक कि घर की स्त्रियां घर में ही रहती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को अनिष्काषिणी कहा है।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से सती प्रथा में प्रचलित होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस समय के धर्मशास्त्र इस प्रथा के विरूद्ध थे। बौद्ध तथा जैन अनुश्रुतियों में भी इस प्रथा का उल्लेख

नहीं मिलता। किन्तु यूनानी लेखकों ने उत्तर पश्चिम में सैनिकों की स्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। हो सकता है कि योद्धा वर्ग की स्त्रियों में सती प्रथा प्रचलित रही हो।

मौर्य युग में बहुत सी स्त्रियां ऐसी थी जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर गणिका या वेश्य के रूप में जीवन यापन करती थी। ये रूपजीवा कहलती थी। इनके कार्य का निरीक्षण गणिकाध्यक्ष तथा एक राजपुरूष करता था।

बहुत सी गणिकाएं गुप्तचर विभाग में भी कार्य करती थी। स्त्रियां अपने पति की ओर से धार्मिक क्रियाओं में भी भाग लिया करती थी। यह तथ्य स्वंय अशोक की द्वितीय देवी कारूवाकी के हितकार्य सम्बन्धी अभिलेख से स्पष्ट होता है। अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि स्त्रियां प्रायः मंगल तथा अमंगल कार्यों में भी लिया करती थी।

नगरों का जीवन ग्रामीण जीवने से ज्यादा चहल पहल युक्त था। नट, नर्तक, गायक, वादक, मदारी आदि अपनी कला का प्रदर्शन कर समाज का मनोरंजन करते थे। नगरों में प्रेक्षायें लोकप्रिय थी। स्त्री तथा पुरूष कलाकार दोनो प्रक्षाओं में भाग लेते थे। उन्हें रंगोपजीवी तथा रंगोपजीविनी कहा गया है। बिहार यात्रा, प्रवहण, आदि अन्य माध्यम से जिनके द्वारा जनता सामूहिक रूप से अपना मनोरजंन करती थी। एक प्रकार के समाज वे थे जिनमें लोग सुरापान, मांसभक्षण तथा मल्लयुद्ध को देखकर मनोरंजन करते थे। अशोक को ये समाज पंसद नहीं था। अतः उसने नये समाजों को प्रारम्भ किया जिनमें हरित, अग्नि, स्तम्भ तथा विमानों की झाकियां प्रस्तुत की जाती थी। ताकि लोगो में धर्माचरण का प्रोत्साहन हो। कुछ ऐसे भी समाज थे सरस्वती के भवन में आयोजित होते थे और इनमें साहित्यिक नाटकों का अभिनय तथा गोष्ठियों का आयोजन होता था। बिहारयात्राओं में मृगया और सुरापान की प्रधानता रहती थी। इसके स्थान पर अशोक ने धम्म यात्राओं का प्रचलन किया। प्रबहण भी एक प्रकार के सामूहिक समारोह थे जिनमें भोज्य और पेय पदार्थों का प्रचूरता से उपयोग किया जाता था।

दातस एक संस्थापित संस्था थी। यह केवल स्मृतियों तथा राजशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में ही नहीं पायी जाती बल्कि अभिलेखों में भी पायी जाती है। अशोक दास और नृत्य में अन्तर रखता है और सबके लिये दया के बर्ताव का आदेश देता है। परन्तु मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में दास नहीं थे। सभी भारतवासी समान थे। डायोडोटस मे भी लिखा है कि कानून के अनुसार उनमें कोई भी दास नहीं हो सकता था। मेगस्थनीज को उद्धित करते हुए ये स्टेबो का कहना है कि भारतीयों में किसी ने भी अपनी सेवा में दास नहीं रखते थे। पुनः स्ट्रेबो कहता है कि **चूंकि उनके पास दास नहीं थे। अतः उनके बच्चो की अधिक आवश्यकता होती थी।** परन्तु भारतीय इलाको से निकल कर इन बस्तियों में लाया जा रहा था। निःसन्देह कलिंग से विस्थापित डेढ लाख बन्दियों को बंजर भूमि साफ करने और नयी बस्तियों के बसाने का कार्य में लगाया गया था। इन बस्तियों में रहने वाले लोगो के लिए शास्त्रार्थ निषिद्ध थे। उनका एक मात्र कार्य खेती करना था। उनकी अतिरिक्त उपज को सरकार ले लिया करती थी।

राजकीय भूमि पर दासों, कर्मकारों और कृषकों द्वारा जुताई व बुआई होती थी। दास कर्मकारों को भोजन आदि दिया जाता था और कार्य के दौरान नकद मासिक वेतन आदि भी दिया जाता था। परन्तु ऐसी भी राजकीय भूमि होती थी जिस पर सीलाध्यक्ष द्वारा खेती नहीं करायी जाती थी। ऐसी भूमि पर करद कृषक खेती करते थे। मेगस्थनीज, स्ट्रेबो, एरियन इत्यादि यूनानी लेखकों का विचार है कि सारी भूमि राजा की होती थी। कृषक राजा के लिए खेती करते थे और 1/4 भाग राजा को लगान देते थे। इसके विपरीत रोमिला थापर का विचार है कि भूमि का स्वामित्व राजा के पास होने का यह आशय यह नहीं था कि व्यक्तिगत लोग थोडी बहुत भूमि के स्वामी नहीं हो सकते थे। यह स्वामित्व केवल उस भूमि पर होता था जिसमें स्वामी या राजा स्वंय खेती करें। अथवा जिसके लिए श्रमिकों की आवश्कता हो। इनके अनुसार राज्य द्वारा भी और

व्यक्तिगत लोगो द्वारा भी श्रमिक रखने की प्रथा भाग थी। इसका उल्लेख अशोक के शिलालेख में भी मिलता है।

रोमिला थापर : के अनुसार भू–राजस्व दो प्रकार का था। प्रथम भूमि के उपयोग पर लगान दूसरा उपज पर करारोपण। अलग–2 आंचलो में करारोपण की दरें अलग–2 थी। जो भूमि की उपज के छठे हिस्से से लेकर एक चौथाई तक होती थी। करारोपण प्रत्येक व्यक्तिगत कृषक द्वारा दिया जाता था। सम्पूर्ण गांव के आधार पर नहीं। साथ ही भूमि की गुणवत्ता का भी ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार यदि कृषक अपने बैल, बीज और हथियार लाये तो उपज का चह 1/2 भाग को अधिकारी होते थे और यदि कृषि उपकरण राज्य द्वारा दिये जाते तो 1/4 या 1/3 अंश के भागी थे। कौटिल्य के अनुसार भी इस राजकीय भूमि के अतिरिक्त ऐसी भूमि भी थी कि जो गृहपतियों तथा अन्य कृषकों की निजी भूमि होती थी और वे उपज का 2 भाग राजा को कर के रूप में देते थे।

इन कृषकों के अवर नियाम अधिकारी समाहर्ता, स्थानिक तथा गोप होते थे। जो गांवो में भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्ति के आंकडे तथा लेखा जोखा रखते थे। राज्य की भूमि की व्यवस्था सीताध्यक्ष द्वारा होती थी। उससे होने वाली आय को कौटिल्य ने सीता कहा है।

भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार की पुष्टि अर्थ शास्त्र के क्षेत्रक–भूस्वामी, उपवास–काश्तकार तथा स्वाम्व से भी हो जाती है। अर्थ शास्त्र में कहा गया है कि जिस भूमि का स्वामी नहीं है वह राजा की हो जाती है। स्वाम्य शब्द के क्रय तथा विक्रय का भी अधिकार था।

मौर्यकाल में कृषि अवस्थाओं के संदर्भ में सिंचाई के महत्व को पूरी तरह समझा गया था। कई क्षेत्रों में सिंचाई के लिये पानीं माप कर वितरित किया जाता था। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहां कहीं राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी वहां एक नियमित जलकर वसूल किया जाता था। इस प्रकार राज्य द्वारा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किया गया था। इसे अर्थ शास्त्र 'सेतृवंध' कहा गया है। इसके अन्तर्गत तालाब, कुएं तथा झीलों पर बांध बनाकर एक स्थान पर पानीं एकत्रित करना आदि निर्माण कार्य आते थे। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल ने सौराठत में एक नदीं पर बांध बनवाकर सुदर्शन झील बनवाया था। इसके अलावा जलागारों, जलाशयों, नहरों और कूओं से सिंचाई का प्रबन्ध सरकार का उत्तरदायित्व माना जाता था। इसके अलावा जलागारी, जलाशयों, नहरों और कूओं से सिंचाई का प्रबन्ध सरकार का उत्तरदायित्व माना जाता था।

कृषि भूमि के अतिरिक्त वन एवं चारागाह भी थे। वन दो प्रकार के थे 1. हस्तिवन जहां हाथी रहते थे 2. दस्यवन : जहां अनेक प्रकार की लकड़ी, लोहा, तांबा इत्यादि पाया जाता था। जंगलो पर राज्य का अधिकार था।

यदि मौर्य काल में कृषि व्यवस्था न एक राजनीति साम्राज्य के निर्माण में सहायता दी तो साम्राज्य ने बदले में आर्थिक गतिविधि के एक और रूप को प्रोत्साहन दिया। उप महाद्वीप ने राजनीति एकीकरण का और एक सुदृढ तथा केन्द्रीयकृत सरकार से मिलने वाली सुरक्षा का एक अपेक्षाकृत उल्लेखनीय परिणाम यह था कि विभिन्न श्रेणियों और फलतः व्यापार में विस्तार की सम्भावनाएं बढ़ गयी। प्रशासन में कुशलता होने से व्यापार का संगठन अपेक्षाकृत सरल हो गया और विभिन्न शिल्पों ने धीरे–2 लघु स्तरीय उद्योगो का रूप धारण कर लिया। प्रायद्वीप में खुदाई के विभिन्न स्थलों पर तीसरी शताब्दी ई0पू0 के स्तरों पर पाये गये उत्तरी काली पॉलिश के बर्तन इस बात के सूचक हैं कि मौर्य काल में व्यापार का विस्तृत विस्तार हो चुका था।

मेगस्थनीज ने शिल्पियों को चौथी जाति जाना है। इसके अनुसार उनमें से कुछ राज्य को कर देते थे और नियत सेवायें भी करते थे। रोमिला थापर का सुझाव है कि राज्य ने कुछ शिल्पियों को जैसे कवच निर्माताओं, जलपोत निर्माताओं आदि को सीधे अपनी सेवा में ले लिया था और उनकी आय को कर मुक्त कर दिया था। लेकिन राजकीय कार्यशालाओं तथा कताई एवं

बुनाई शालाओं एवं राजकीय खानों में काम करने वाले अन्य लोगो की आय पर कर लगता था। बाकी लोग या तो व्यक्तिगत रूप से या किसी शिल्पी श्रेणी के सदस्यों के रूप में कार्य करते थे। ये श्रेणियां विशाल तथा मिश्रित ढांचे की होती थी और शिल्पियों के लिये इनमें अनेक काम करने और श्रेणियों के साथ प्रतियोगिता करने का व्यय बच जाता था। शिल्पियों के जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा को राज्य की ओर से समुचित व्यवस्था थी।

मौर्य युग का प्रधान उद्योग मूत कातने और बुनने का था। ऊन, रेशे, कपास, छाज, क्षोम और रेशम सूत कातने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। अर्थ शास्त्र से पता चलता है कि काशी, बंग, पुण्ड, कलिंग, मालवा, सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। काशी तथा पुण्ड में रेशमी कपडे भी बनते थे। चीन के पट्ट का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि रेश चीन से आता था। मेगस्थनीज ने भी भारतीय वस्त्रों की बडी प्रशंसा किया है।

मेगस्थनीय का कथन है कि इस देश में सोना और चांदी बहुत होता है। तांबा व लोहा भी प्रचूरता में उपलब्ध था। जस्ता तथा अन्य धातुएं भी उपलब्ध थी। इनका उपयोग आभूषण, अस्त, शास्त्र तथा साज सामान एवं सिक्को के लिये किया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि इस युग में खानो से कच्ची धातु निकालने, उसे गलाने शुद्ध करने और लचीला बनाने की अच्छी जानकारी प्रस्तुत हो चुकी थी। सोने और चांदी के अनेक प्रकार के आभूषण तथा सिक्के सूवर्णाध्यक्षा व लक्षणाध्यक्ष के निरीक्षण में बनते थे। मणिमुक्ताओं का उपयोग समृद्ध परिवारों में होता था। मोतियों को अनेक लड़ियों में पिरोकर हार बनाये जाते थे। एरियन का कथन है कि ''भारत में धनी लोग अपने कानों में हाथीदांत के उच्चकोटि के आभूषण पहनते थे।

इन उद्योगो के अतिरिक्त अनेको प्रकार के अन्य उद्योग भी मौर्य काल मे प्रचलित थे। जैसे हाथी दांत का काम, मिट्टी के बर्तन, चर्म उद्योग, काष्ठ उद्योग आदि।

नियकिस ने लिखा है कि ''भारतीय स्वेत रंग के जूत पहनते हैं जो अति सुन्दर होते हैं। मौर्यकाल के काली आपदार मिटटी के बर्तन मिले हें। जो पुरावेत्ताओं के अनुसार ऊचे वर्ग के लोगो द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। पत्थर तराशने का कार्य भी विकसित अवस्था में था। अशोक के स्तम्भ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। पत्थर पर पॉलिश का काम अपनो चरम उत्कर्ष पर था। सरनाथ सिंह स्तम्भ तथा बराबर गुफाओं की चमक अद्वितीय है।

रोमिला थापर का मत है कि ''इन समस्त निर्मित वस्तुओं पर कर लगाया जाता था। उन पर उत्पादन की तिथि भी अंकित कर दी जाती थी। जिससे उपभोक्ताओं को पुरानी तथा नई वस्तुओं की पहचान हो सके। इन वस्तुओं पर कर निर्धारण से पहले वाणिज्य अधीक्षक प्रचलित मूल्य, पूर्ति मांग तथा उत्पादन व्यय आदि अनेक बातों पर विचार करता था।

सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक राजनैतिक सूत्र में आबद्ध हो जाने के फलस्वरूप मौर्य काल में आतंरिक तथा विदेशी दोनों व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। उत्तर पश्चिम दक्षिण की विजय से दक्षिण व्यापार मार्ग तथा पश्चिम व्यापार मार्ग पर मौर्या के अधिकार में आ गया। दक्षिण की विजय से दक्षिण व्यापार मार्ग तथा पश्चिम व्यापार मार्ग पर मौर्यों का नियंनत्रण हो गया। कलिंग की विजय से पूर्व में दक्षिण पूर्व मार्ग भी साफ हो गया। मेगस्थनीज के विवरण से स्पष्ट है कि मार्ग निर्माण का एक विशेष अधिकारी होता था जो ऐग्रोनोमोई कहलाता था। ये सड़क की देखरेख करते थे और 10 स्टेडियम की दूरी पर एक स्तम्भ खड़ा कर देते थे।

साम्राज्य के राजमार्गों में पाटलिपुत्र से एक मार्ग पश्चिमोतर प्रदेश को जाता था जिसकी लम्बाई मेगस्थनीज के अनुसार 1300 मील थी। पाटलिपुत्र के आगे यह मार्ग वामलिखि तक जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण मार्ग हैमवत पथ था। जो हिमालय की ओर जाता था। हिमालय की ओर जाने वाले मार्ग की तुलना दक्षिण को जाने वाले मार्ग से करते हुए कौटिल्य ने दक्षिण मार्ग को अधिक लाभदायक बताया है। क्योंकि दक्षिण से बहुमूल्य व्यापार वस्तुओं मुक्ता, मणि, हीरे, सोना, शंख आदि आते थे। दक्षिण के लिये एक पुराना मार्ग श्रावस्ती से गोदावरी के तटवर्ती नगर

प्रतिष्ठान तक जाता था। उत्तर की ओर एक पुराना मार्ग चम्पा से बनारस तक और जमुना के किनारे–किनारे कौशाम्बी तक जाता था। एक तीसरा मार्ग श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था।

पश्चिमी तट पर भी समुन्द्री मार्ग भड़ौच तथा काठियावाड होकर लंका तक जाता था। पश्चिम तट पर सोपारा भी एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था। पूर्व में जहाज बंगाल में तामलिखि बन्दरगाह से पूर्वी तट के अनेक बन्दरगाहों से होते हुए से होते हुए लंका तक जाते थे। रोमिला थापर के अनुसार अशोक द्वारा कलिंग विजय का एक कारण व्यापार की दृष्टि से कलिंग का महत्व था।

साम्राज्य के भिन्न–भिन्न प्रदेश भिन्न–भिन्न वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध थे। कश्मीर, कोशल, विदर्भ व कलिंग हीरे के लिए प्रख्यात थे। हिमालय प्रदेश चमडे के लिए प्रसिद्ध था। मगध व सुवणकुण्ड वृक्षो के रेशे से बने हुए वस्त्रों के लिये, काशी सभी प्रकार के वस्त्रों के लिये, बंगाल मलमल के लिए तथा ताग्रलिखि, पाण्डय व केरल अपने मोतियों के लिये प्रसिद्ध थे। इन सभी वस्तुओं का व्यापार देश तथा विदेश में स्थल व जल दोनों मार्गों से होता था। कौटिल्य ने स्थल मार्गीय व्यापार की अपेक्षा नदीं मार्गों से व्यापार को अधिक सुरक्षित माना है। क्योंकि जलिय मार्ग चोर, डाकुओं के भय से मुक्त था। जबकि स्थलीय मार्ग में अनेक कठिनाईयां थी। चोरों तथा जंगली जानवरों से विशेष भय था। कठिनाईयों के कारण व्यापारी काफिलों मं संगठित होकर चलते थे। यात्रियों को यातायात एवं सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाएं राज्य की आर से की जाती थी। कौटिल्य का कथन है कि ''तुफान के कारण आहत हुआ जब कोई जहाज बंदरगाह पर पहुंचे तो बंदरगाह के अध्यक्ष को उस पर पिता की भांति अनुग्रह कराना चाहिए।'' यदि मार्ग में व्यापारियों का नुकसान हो जाता था तो राज्य उसकी क्षतिपूर्ति करता था।

अनार्देशीय व्यापार की भांति स्थलीय तथा जलीय दोनों मार्गों से विदेशी व्यापार भी अपनी चरम उन्नति पर था। अर्थशास्त्र में विदेशी सार्थवाहों–काफिलों का उल्लेख आया है जो पश्चिमोत्तर भारत के स्थलीय मार्गों से व्यापार के लिये आते थे। समुन्द्र में आने जाने वाले जहाज प्रवहण कहलाते थे।

यूनानी शासकों के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध की वजह से पश्चिम एशिया व मिस्र के साथ भारत के व्यापार के लिये अनुकूल वातावरण बना। एक मुख्य मार्ग तक्षशिला से काबुल वैक्ट्रीया और वहां से पश्चिम देशों की तरफ जाता था।

समुन्द्री मार्ग भारत के पश्चिमी समुन्द्र तट से पारस की खाड़ी होते हुए अदन तक जाता था। भारत और मिस्र से आने वाली व्यापारिक वस्तुओं विनिमय अरब सागर के तटवर्ती बन्दरगाहों पर होता था। भारत से मिस्र को हाथी दांत कछुए, सीपियां, मोती, रंग, नील व बहूमूल्य लकड़ी निर्यात होती थी।

भारत में आने वाली विदेशी सामग्री में चीनपटट् और कार्दनिक मुक्ता का विशेष महत्व था। भारत तथा मिस्र के व्यापार को प्रोत्साहन बरनिस नाम का एक बन्दरगाह स्थापित करवाया था। मौर्य विदेशियों की देखरेख के लिये एक विशेष समिति का होना इस बात का प्रमाण है कि भारत तथा विदेशों के बीच आवागमन की अच्छी सुविधा थी जिससे व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। रोमिल थापर का विचार है कि ''पण्य वस्तुओं की बिक्री पर कडी दुष्टि रखी जाती थी। पण्य वस्तुओं के मूल्य का पांचवा भाग चुंगी के रूप में निर्धारित किया जाता था और इसके अतिरिक्त चुंगी का पांचवा भाग व्यापार कर होता था। करो की चोरी अवश्य होती थी लेकिन उनके लिये कड़े दण्ड व्यवस्था थी व्यापारियों को अत्यधिक मुनाफाखोरी रोकने के लिए मूल्यों पर नियंत्रण रखा जाता था और आम तौर पर लाभ का प्रतिशत भी निश्चित रहता था। बैंकिंग प्रणाली नहीं थी। लेकिन रूपया ब्याज पद देने की प्रथा थी।

अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार की मौर्यकालीन मुद्राओं के नाम आते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं :– सुवर्णकर्षाण, पण या धरण चांदी, माषक–तांबा, काकणि–तांबे का कौटिल्य ने समस्त मुद्राओं

को दो कोटियों में बांटा है। प्रथम कोटी में कीष प्रवेश्य मुद्रायें आती थी। सम्पूर्ण राजकीय कार्यों में इन्हीं मुद्राओं का प्रयोग होता था। दूसरी कोटि में व्यवाहरिक मुद्रांए थी। जनता का साधारण लेनदेन इन्हें मुद्राओं के द्वारा होता था। मुद्रा निर्माण एक मात्र सरकारी टकसालों में होता था। टकसाल के अधिकारी को कौटिल्य ने सौवणिक और लक्षणाध्यक्ष के नाम दिये हैं।